छात्रहितकारी पुस्तकमाला सं०—७

वीरों की सच्ची कहानियाँ

OR

True Stories of the Indian Heroes

लेखक
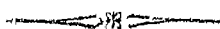
अध्यापक जहूरबख़्श
'हिन्दी कोविद'

प्रकाशक

छात्रहितकारी पुस्तकमाला
दारागंज, प्रयाग।

बारहवाँ संस्करण १०००] १९४५ [मू० ।)

प्रकाशक

श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०

प्रोप्राइटर—छात्र हितकारी पुस्तकमाला

दारागंज प्रयाग।

मुद्रक

सरयू प्रसाद पांडेय 'विशारद'

नागरी प्रेस, दारागंज,

प्रयाग।

समर्पण-पत्र

—❋:०:❋—

प्रगाढ़ विद्वान्, सहृदय, देशभक्त

शिक्षाप्रेमी, संयुक्तप्रांतीय शिक्षा

विभाग के भूतपूर्व मंत्री, "लीडर"

पत्र के भूतपूर्व सम्पादक

स्वर्गीय सर सी० वाई०

चिन्तामणि जी के

कर कमलों में

सादर समर्पित

तीसरा संस्करण

जिस समय हमने यह पुस्तक लिखी थी, यह कल्पना भी न की थी, कि हिन्दी संसार इसका इतना आदर करेगा, तथा इतने शीघ्र इसके चौथे संस्करण का शुभअवसर देखने को मिलेगा। पाठकों की इस गुण-ग्राहकता से निश्चय ही हमें नूतन उत्साह प्राप्त हुआ है, और यदि प्रकाशक महोदय ने हमें उत्साहित किया, तो हम शीघ्र ही पाठकों की सेवा में ऐतिहासिक कहानियों का इससे भी बढ़िया संग्रह प्रस्तुत करने की प्रबल अभिलाषा रखते हैं। हमारा विश्वास है कि वैसा उत्तम संग्रह कभी पाठकों ने न देखा होगा। वह उनमें नव-जीवन एवं नूतन उत्साह की एक अभिनव स्फुर्ति उत्पन्न करेगा।

तीसरे संस्करण में हमने इस पुस्तक के संशोधन में यथेष्ठ परिश्रम किया है। आशा है, अब यह पहले से भी सुन्दर मालूम होगी।

सोमवार
२८ जनवरी १६२९

चतुरसेन

सूची

नाम कहानी | पृष्ठ

वीरों की सच्ची कहानियाँ

—:०:—

(१)

महात्मा बुद्ध और जैत्रसिंह

कोई २५०० बरस पहले की बात है। हिमालय पर्वत की तराई में कपिलवस्तु नामक एक राज्य था। राजा शुद्धोदन वहाँ राज करते थे। महात्मा बुद्ध, उन्हीं शुद्धोदन के पुत्र थे। उनकी माता का नाम महामाया था। महात्मा जी पहले 'सिद्धार्थ' और 'गौतम' के नाम से प्रसिद्ध थे। राजा शुद्धोदन की इच्छा थी कि हमारा पुत्र भी हमारे समान ही बलवान और हिम्मतवर हो, इसलिए और राजकुमारों के समान सिद्धार्थ को भी युद्ध विद्या की शिक्षा दी जाती थी। राजकुमार काम सीखते तो थे, पर उनका मन और ही कहीं रहता था। पढ़ने-लिखने और धर्म की बातों पर विचार करने में ही अपना अधिक समय बिताते थे। अपने बगीचे के कोने में जाकर बैठ जाते और घन्टों सोच विचार करते रहते थे। वे सदा यही सोचा करते थे—संसार में जहाँ देखो, वहीं दुख का राज्य है, सुख तो आदमी केवल कहने भर को जानते हैं! तब क्या किया जाय कि मैं भी सुख पाऊँ और मेरे साथ दुनिया के सब लोग भी सुख पावें! यही सब सोचते-सोचते सिद्धार्थ का मन दुनिया से दूर होता गया।

एक दिन राजकुमार सिद्धार्थ नगर में घूमने गए। रास्ते में

उन्हें कई बूढ़े, रोगी और मुर्दे दिखाई दिए। उन्होंने उनकी हालत पर बहुत विचार किया। उनके मन में विचार उठा कि एक दिन मेरी भी ऐसी हालत हो जायगी। मुझे भी ये दुःख उठाने पड़ेंगे। उफ! दुनिया के चारों ओर किस प्रकार दुःख का जाल बिछा हुआ है! उस जाल को तोड़ कर निकल भागना कितना कठिन है। तब तो अभी से होशियार हो जाना चाहिए। उस दिन सिद्धार्थ को दुनिया से ऐसी घृणा हुई कि वे उससे दूर होने के लिए छटपटाने लगे। उसी दिन, रात को वे अपने माता-पिता, स्त्री-पुत्र, भाई-बन्धु सब से नेह-नाता तोड़, राज-पाट का सारा सुख छोड़कर घर से निकल खड़े हुए। रास्ते में उन्होंने अपने सुन्दर रेशमी कपड़े त्याग दिये, गेरुये कपड़े पहन लिये। सिद्धार्थ जी खासे सन्यासी बन बैठे। उस समय उनकी उमर केवल तीस बरस की थी।

सिद्धार्थ पहले पटना पहुँचे और पास ही के एक गाँव में दो विद्वान ब्राह्मणों के पास कुछ दिन तक धर्म की पुस्तकें पढ़ते रहे, पर मन को शांति न मिली। तब वे गया के घने जङ्गल में चले गए। वहाँ छः बरस तक बड़े-बड़े कष्ट सहकर तप और ध्यान में लगे रहे। शरीर सूख कर काँटा होगया, पर चित्त को शांति न मिली। एक दिन विचार करते-करते उन्हें सूझ पड़ा, कि शांति से जीवन बिताने, सब पर दया और प्रेम करने से ही आदमी सुखी हो सकता है। मनुष्य के दुःख का कारण केवल इच्छा ही है; इसलिये इच्छा को ही मारना चाहिए। इस बात के सूझते ही सिद्धार्थ को बड़ी शान्ति मिली, तभी से वे महात्मा बुद्ध के नाम से प्रसिद्ध हुए। इसके बाद महात्मा जी सब लोगों को अपने विचार सुनाने लगे। लोगों ने उनकी बातें बहुत पसन्द की। लाखों आदमी उनके शिष्य बन गए। उनके शिष्य 'बौद्ध' और उनके विचार 'बौद्धधर्म' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

एक दिन महात्मा जी अपने शिष्यों को उपदेश दे रहे थे। उसी समय उनके पास एक सुन्दर युवक आया। उसने हाथ जोड़कर महात्मा जी को प्रणाम किया और फिर उनसे कहा—"भगवन्, संसार से मेरा मन ऊब गया है। लोग जिसे सुख कहते हैं, उसे मैं दुःख समझता हूँ। राज-पाट, धन-दौलत ये सब जंजाल ही तो हैं। अब मेरी इच्छा है कि मैं संन्यासी हो जाऊँ, आपकी सेवा में रहूँ और भगवान् का भजन कर जीवन के बाकी दिन बिताऊँ। कृपा कर आप मुझे अपना शिष्य बना लीजिए। मैं बहुत दूर देश से आ रहा हूँ, कचम्ब देश का राजकुमार हूँ, जैत्रसिंह मेरा नाम है।

महात्मा बुद्ध ने उसे जवाब दिया—"तुम्हारा विचार तो ठीक है; पर अभी तुम मेरे शिष्य होने योग्य नहीं। मैं तुम्हें शिष्य न बना सकूँगा।"

इस पर जैत्रसिंह ने घबड़ाकर उनसे पूछा—"भगवन्, यह आप क्या कहते हैं। मैं बड़ी आशा से आपकी सेवा में आया हूँ, मुझे निराश न कीजिए। बतलाइये मुझे क्या करना पड़ेगा, जिससे मैं आपका शिष्य हो सकूँ?"

महात्मा जी मुसकुरा कर बोले—"अच्छा सुनो, संन्यासी बनकर सुखी होने के लिए आदमी में ऊँचे गुण चाहिए। ईर्षा, बुराई और घृणा से बचना चाहिए। देखो, तुम्हारे पिता के दरबार में तुम्हारा एक मित्र था। दरबार में एक आदमी आया और वह तुम्हारे मित्र से मेल-जोल बढ़ाने लगा। तुम यह बात बर्दाश्त न कर सके। तुमने उससे घृणा की और बेचारे को अपने मित्र से मित्रता न करने दी। सोचो तो वह आदमी तुम्हारे मित्र से प्रेम बढ़ा रहा था, इसमें तुम्हारी क्या हानि थी? बेचारा दुखित होकर चला गया, अब वह तुमसे घृणा करता है। दूसरी बात सुनो। एक बार तुम अपनी स्त्री पर

जरा सी बात पर बिगड़ उठे। बेचारी कितनी रोई-गिड़गिड़ाई; पर तुम न पसीजे। तुमने उसे घर से निकाल कर ही चैन ली। अब वह तुमसे दुखी रहती और घृणा करती है। जो आदमी आदमी से घृणा करता है, उस पर प्यार नहीं कर सकता, वह संन्यासी बनकर कैसे सुखी हो सकता है?"

जैत्रसिंह ने सिर झुका लिया और पिता के राज्य में लौट गया। जैत्रसिंह के पिता की मृत्यु हो चुकी थी। लोगों ने धूम-धाम से उसे राजा बनाया। जैत्रसिंह राजा बन कर प्रेम से प्रजा का पालन करने लगा। प्रजा भी उसे खूब चाहने लगी।

जैत्रसिंह को बुद्धदेव की बातें लग गई थीं। अब उसने अपनी गलतियों को सुधारने का इरादा किया। पहले तो उसने उस आदमी को बुलवाया, फिर अपने अपराध की क्षमा माँगी। उसे एक सुन्दर महल रहने के लिए दिया और अपने मित्र से उसकी मित्रता करा दी। फिर जैत्रसिंह ने अपनी रानी को भी बुलवा लिया और उसे बड़े प्रेम तथा आदर से अपने पास रक्खा। जैत्रसिंह के ये काम देख कुछ मतलबी आदमी नाराज हो गये। पर जैत्रसिंह ने उनकी नाराजी की जरा भी परवाह न की।

तब वे लोग जैत्रसिंह के छोटे भाई को भड़काने लगे। उन्होंने उससे कहा—"राजा बनने के योग्य तो आप ही हैं। यदि आप राजा बनने की इच्छा रखते हों तो हम लोग आपकी सहायता करने को तैयार हैं।" जैत्रसिंह का भाई उनकी बातों में आ गया। तब सब लोगों की सलाह से, आराद नामक एक क्षत्रिय को जैत्रसिंह की हत्या करने का काम सौंपा गया।

जैत्रसिंह को भी यह हाल मालूम हो गया। पर वह न तो डरा ही और न उसने अपनी रक्षा का ही कुछ प्रबन्ध किया। एक दिन जैत्रसिंह ने देखा कि एक आदमी नङ्गी तलवार लिए महल में आ रहा है, उसे देखते ही जैत्रसिंह सावधान हो गया।

हत्यारे ने झपट कर राजा पर वार किया। पर इसी समय राजा के उसी मित्र तथा दूसरे मित्रों ने बिजली के समान लपक कर हत्यारे को पकड़ लिया। राजा साफ बच गया।

जैत्रसिंह ने हत्यारे से पूछा—"आराद, मैंने तुम्हारा क्या नुकसान किया है? तुम मुझे क्यों मारना चाहते हो?"

आराद ने जवाब दिया—"आप बुरे लोगों से प्रेम करते हैं। आप से मेरी ही नहीं, राज्य भर की हँसी हो रही है।"

जैत्रसिंह समझ गया कि हत्यारा अज्ञानी है। इस पर तो दया करनी चाहिए। तब जैत्रसिंह ने सब लोगों से कहा कि आप लोग इसे छोड़कर बाहर चले जाइए। उन लोगों ने वैसा ही किया। तब जैत्रसिंह ने आराद से कहा—"आराद, तुम मेरे भाई हो। हम तुम एक ही हैं। तुम्हारे अपराध पर मुझे कुछ रंज नहीं। बोलो क्या चाहते हो?"

यह सुनकर आराद रोने लगा और राजा के पैरों पर गिर कर बोला—"महाराज! मैं पापी हूँ। मेरा अपराध क्षमा कीजिए।" जैत्रसिंह ने उसे उठाकर गले से लगा लिया।

यदि जैत्रसिंह ने आराद पर नाराजी और घृणा की होती तो वह अपनी करनी पर इस प्रकार दुखी न होता। उलटा वह हमेशा के लिए राजा का शत्रु बन बैठता। घृणा का व्यवहार ही बुरा होता है, उससे कब कौन सुखी हुआ?

उसी दिन जैत्रसिंह ने राज्य छोड़कर बुद्धदेव की शरण ले ली।

(२)

सिकन्दर और भारत का एक विद्वान्

दुनिया में बादशाह सिकन्दर का नाम बहुत प्रसिद्ध है। वे यूनान देश के रहने वाले थे। बीस बरस की उमर में ही

उन्हें राजगद्दी मिली और बत्तीस बरस की थोड़ी-सी उमर में ही उनका देहान्त हो गया। इन दस-बारह बरसों में उन्होंने मिसर, एशियामाइनर ईरान, आदि कितने ही देश जीत लिए थे। भारत पर भी उन्होंने हमला किया था और यहाँ के आदमी जी खोलकर उनसे लड़े थे।

उन दिनों भारत में बड़े नामी नामी विद्वान थे। उनकी विद्या-बुद्धि देखकर दूसरे देश वाले दंग हो जाते थे। जब सिकन्दर भारत में थे, तब उन्होंने यहाँ के एक विद्वान की बड़ी बड़ाई सुनी। इन्होंने उस विद्वान की जाँच करने का इरादा किया। सिकन्दर ने उसके पास मक्खन से भरा हुआ एक कटोरा भेजा। कटोरे में मक्खन लबालब भरा हुआ था। विद्वान ने कटोरा देखकर कुछ देर तक विचार किया। फिर बहुत सी सुइयाँ मँगवाई। सुइयों की नोंकें मक्खन में चुभो दीं और कटोरा ज्यों का त्यों बादशाह के पास लौटा दिया।

सिकन्दर ने कटोरा ले लिया और सब सुइयों का एक गोला बनवा कर विद्वान के पास भिजवा दिया। विद्वान ने फिर कुछ सोच-विचार कर उस गोले को तोड़-फोड़ डाला और उसका एक अच्छा-सा आइना बना, उसे सिकन्दर के पास वापिस भिजवा दिया। सिकन्दर आइने में अपना मुँह देखकर बहुत खुश हुए। उन्होंने पानी से भरी हुई थाली में वह आइना रख कर विद्वान के पास भिजवाया। विद्वान था पूरा चतुर। उसने चटपट उस आइने का एक कटोरा बना डाला, और उसे थाली में इस तरह रखा कि वह पानी पर तैरता रहे। फिर उसने वह थाली और कटोरा सिकन्दर के पास भेज दिया। विद्वान का यह काम देख सिकन्दर को बड़ा अचरज हुआ।

अब की बार सिकन्दर ने कटोरे में धूल भरवाई और उसे विद्वान के पास भिजवा दिया। विद्वान धूल भरे कटोरे को

देखते ही रोने लगा। जब उसका जी शान्त हुआ तब उसने बादशाह के नौकर से कहा कि तुम इस कटोरे को इसी तरह वापिस ले जाओ। नौकर कटोरे को बादशाह के पास ले आया और उन्हें विद्वान के रोने का हाल सुना दिया।

दूसरे दिन बादशाह ने विद्वान को अपने दरबार में बुलवाया। बादशाह ने उसका बड़ा आदर किया और बड़े प्रेम से उसे अपने पास बिठाया। फिर सिकन्दर ने उससे पूछा—"आपने मक्खन भरे हुए कटोरे में सुइयाँ चुभो दी थीं? और उन्हें किस मतलब से मेरे पास भेजा था?"

विद्वान् ने जवाब दिया—"आपने मक्खन का भरा हुआ प्याला मेरे पास भेजा; उससे मैं आपके मन की बात समझ गया। आपका मतलब था कि जिस प्रकार यह प्याला मक्खन से लबालब भरा हुआ है, और इसमें और मक्खन नहीं समा सकता; उसी प्रकार मेरा हृदय भी ज्ञान से भरा हुआ है, अब उसमें और ज्ञान नहीं समा सकता। परन्तु मैंने उसमें सुइयाँ चुभो कर आपको यह बताया था कि जिस प्रकार इस भरे हुए प्याले में सुइयों की नोकें समा सकती हैं, उसी प्रकार आपके हृदय में मेरी कुछ न कुछ विद्या ज़रूर समा सकती है।"

बात सच थी, सिकन्दर सन्नाटे में आ गए। तब उन्होंने विद्वान से पूछा—अब यह भी बतलाइए कि मैंने सुइयों का गोला बनाकर आपके पास किस मतलब से भेजा था और आपने उसका आइना किस मतलब से बना डाला?"

विद्वान मुस्करा कर बोला—"यह भी सुनिए। गोले से मैंने आपका यह मतलब समझा, कि आप कहते हैं कि मेरा हृदय तो राज्य और लड़ाई करते करते इस गोले के समान कड़ा अर्थात् सख्त हो गया है। तब मैंने उसका आइना बनाकर आपको यह जवाब दिया था कि जिस प्रकार यह सख्त गोला आइने के रूप में

साफ होकर चमक सकता है, उसी प्रकार मैं अपनी विद्या-बुद्धि से आपके हृदय को भी साफ और चमकदार बना सकता हूँ।"

सिकन्दर के अचरज का ठिकाना न रहा। उन्होंने खुश होकर कहा—"अच्छा, कृपाकर अब बाकी बातों का मतलब भी कह डालिए।"

विद्वान् ने उसी तरह मुसकरा कर जवाब दिया—"बहुत अच्छा सुनिए! अब आपने आइने को थाली के पानी में डुबो कर भेजा, तब आपका मतलब यह था कि अब तो उमर ही बीत चुकी है, थोड़े ही दिन जीने को रह गये हैं। तब मैंने आइने को कटोरा बना और पानी पर तैरा कर आपको यह जवाब दिया था—कुछ परवाह नहीं, अब भी बहुत विद्या सीखी जा सकती है। फिर अन्त में आपने धूल से भरा हुआ कटोरा भेजा! उससे आपका मतलब यह था कि अन्त में मृत्यु है और यह शरीर धूल में मिल जायगा। तब उत्तर में मैंने रो दिया। क्योंकि मरने के बाद केवल रोना ही तो रह जाता है।"

विद्वान् की बातों से सिकन्दर बहुत खुश हुए, बोले—"आपने मेरी बातों का मतलब बिलकुल ठीक समझा और उसका उत्तर भी बहुत ठीक दिया। सचमुच यहाँ के लोग बहुत विद्वान् होते हैं। मैं यहाँ वालों के साथ अच्छा व्यवहार करूँगा।"

इसके बाद सिकन्दर ने विद्वान् के सामने इनाम में देने के लिए कितनी ही कीमती चीजें रखीं और उसे कुछ जागीर भी देने का इरादा किया। विद्वान् ने उन्हें नम्रता पूर्वक जवाब दिया—"महाराज, ये चीजें मेरे काम की नहीं। यदि मैं इनकी इच्छा करता; तो मुझे विद्या से ही हाथ धोना पड़ता। जिन चीजों से मेरी विद्या की हानि होती हो, मैं उन्हें नहीं ले सकता। क्षमा कीजिये।"

इसके बाद विद्वान् ने बादशाह को कितने ही उपदेश दिये, फिर वह अपने स्थान को लौट गया।

महाराज अशोक और जितेन्द्र

भारत में जितने बड़े-बड़े राजा हो गये हैं, उनमें अशोक का नाम बहुत प्रसिद्ध है। कई लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि भारत में उनसे बढ़कर प्रतापी, बलवान् और बड़ा राजा नहीं हुआ। अशोक, महाराज चन्द्रगुप्त के पोते थे। उनके पिता का नाम बिन्दुसार था। जब अशोक के पिता की मृत्यु हुई, तब वे उज्जैन के सूबेदार थे। पिता के मरने पर वे मगध देश की राजगद्दी पर बैठे। पहले अशोक का स्वभाव बड़ा कठोर था—उनमें दया का नाम भी न था। उनकी दुष्टता के कारण लोग उन्हें चण्डाशोक कहने लगे थे।

अशोक बड़े बहादुर और योधा थे। उन्होंने राज्य पाते ही धीरे धीरे बहुत से देश जीत कर उसे खूब बढ़ा लिया। आज कल जिस प्रदेश को उत्तरी सरकार*कहते हैं, वह पहले कलिंग देश कहलाता था। कलिंग स्वतन्त्र देश था, वहाँ के राजा हिन्दू थे। एक दिन अशोक के पास एक बौद्ध सन्यासी आया। उसने महाराज से कहा—कलिंग की प्रजा आजकल बहुत दुखी है, वह आपको बुला रही है। शीघ्र चलकर उसका दुःख दूर कीजिये। महाराज ने उसकी बातों की जाँच तो की नहीं, फौरन जोर-शोर से कलिंग पर धावा बोल दिया।

कलिंग देश के राजा मृगेन्द्र भी बड़े बहादुर थे। वे अशोक से जरा भी न डरे। उन्होंने बड़े उत्साह से लड़ाई की तैयारियाँ कीं। कई महीने तक मार-काट का बाजार खूब गरम रहा। अन्त में मृगेन्द्र की सेना के पाँव उखड़ गये। महाराज मृगेन्द्र भी प्राण लेकर भाग गये।

*यह ज़िला मद्रास प्रदेश में है।

परन्तु मृगेन्द्र की सेना में एक युवक ऐसा था, जो राजा और सेना के भाग जाने पर भी लड़ाई के मैदान से तिल भर पीछे न हटा। वह ज्यों का त्यों लड़ाई के मैदान में डटा रहा। उस वीर का नाम था—जितेन्द्र। जितेन्द्र महाराज मृगेन्द्र का राजकुमार था। जब मृगेन्द्र सेना समेत भागने लगे, तब तो जितेन्द्र ने बड़े ही साहस और धीरज से वह वीरता दिखलाई कि शत्रु दंग रह गये। अशोक के सेनापति जयगुप्त ने मृगेंद्र की भागती हुई सेना का पीछा किया। उसी समय जितेंद्र ने जयगुप्त का रास्ता रोक लिया। उस वीर बालक का यह साहस देखते ही मृगेंद्र की कितनी ही सेना वहाँ अड़ गई, राजकुमार के उत्साह ने उनका उत्साह चौगुना बढ़ा दिया। पहले के समान ही जमकर युद्ध होने लगा। जितेन्द्र दिल खोलकर लड़ने लगा। वह बार-बार बड़ी तेजी से जयगुप्त पर हमला करता था। उसकी तलवार बिजली के समान चल रही थी। वह जहाँ को पिल पड़ता, वहीं अशोक की सेना काई के समान फट जाती थी। लोथ पर लोथ गिरने लगी, मैदान में खून के फुहारे छूटने लगे। जितेन्द्र की वीरता ने जयगुप्त के दाँत खट्टे कर दिए। जयगुप्त ने जीत की आशा छोड़ दी, पर साहस न छोड़ा। वह बराबर जितेन्द्र से जुटा रहा। बेचारा जितेन्द्र बालक था, कहाँ तक लड़ता। लड़ते लड़ते थक गया। इसी समय जयगुप्त की तलवार ने जितेन्द्र के हाथ को बुरी तरह घायल कर दिया। उसके हाथ से तलवार गिर पड़ी और फौरन जयगुप्त ने उसे पकड़ लिया। ज्योंही जितेन्द्र पकड़ा गया, त्योंही उसकी सेना भाग गई।

जितेन्द्र पकड़ा गया सही, पर शत्रुओं ने उसकी बड़ी बड़ाई की। खुद अशोक ने अपनी आँखों उसकी वीरता देखी थी। वे भी उसकी तारीफ कर रहे थे। इसी समय जयगुप्त जितेन्द्र

को लेकर महाराज के पास आ पहुँचा। महाराज ने जयगुप्त से पूछा—'यह वीर बालक कौन है ?'

जयगुप्त ने जवाब दिया—'महाराज, ये कलिंग देश के राजकुमार जितेन्द्र हैं। जब महाराज मृगेन्द्र की सेना तितर-बितर हो गई और मैंने उसका पीछा किया, तब उन्होंने मेरा सामना किया। ये भागती हुई सेना को रोक कर मुझसे भिड़ गए। इसमें शक नहीं कि इन्होंने जी खोलकर मुझसे युद्ध किया, पर अन्त में मैंने इन्हें पकड़ लिया।'

अशोक ने मुस्कुरा कर जितेन्द्र से कहा—"अच्छा राजकुमार, मैंने अपनी आखों तुम्हारा युद्ध देखा है। तुम्हारी बहादुरी देख मेरी तबीयत खुश हो गई। तुम्हें कैद में देख मुझे दुःख होता है। मैं नहीं चाहता कि तुम देर तक कैद रहो। यह सच है कि तुम्हारी हार से मेरी जीत हुई है; पर मैं तुम्हें इसी समय छोड़ सकता हूँ। बोलो तुम क्या चाहते हो ?"

राजकुमार ने घमण्ड से जवाब दिया—"महाराज, यह सच है कि जीत आपको हुई है, पर मैं आपसे दया की भीख नहीं माँग सकता। अहा ! क्या ही अच्छा होता यदि मैं लड़ाई के मैदान में मारा जाता। खैर, मैं सब कुछ कर सकता हूँ, पर मुझसे यह कभी न होगा कि मैं आपसे अपने छूटने की प्रार्थना करूँ।"

अशोक ने फिर उसी प्रकार मुसकुरा कर कहा—"राजकुमार, तुम प्रार्थना न करो, मैं भी यह नहीं चाहता। यही मेरे लिए बहुत है कि तुम मेरी जीत तो मानते हो। मैं तुम्हें खुशी से छोड़ देता हूँ—यही नहीं, तुम्हारा राज्य भी तुम्हें ही लौटाए देता हूँ।"

इसके बाद उन्होंने जयगुप्त को आज्ञा दी कि जितेन्द्र के बन्धन खोल दो। बन्धन खोल दिए गए। राजकुमार ने लज्जा से सिर झुका लिया और अशोक से कहा—"महाराज, मुझे माफ कीजिए। इस प्रकार दया दिखाकर आप मेरा अपमान करते हैं।"

अशोक—"नहीं राजकुमार, मैं तुम्हारी बहादुरी पर खुश हूँ। मैं तुम्हारा आदर करता हूँ। यह राज्य अब मेरा है, और तुम्हारी बहादुरी पर खुश हो मैं तुम्हें इसे इनाम में देता हूँ।"

राजकुमार—"मैंने युद्ध में किया ही क्या है। जो कुछ किया, उसका करना तो मेरा कर्त्तव्य ही था। मेरी बहादुरी तो तब थी, जब मैं लड़ाई में अपने प्राण दे देता, या आपकी सेना को भगा देता। पर, जब आप मानते ही नहीं, तब यही सही। इस कृपा के लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।"

अशोक राजकुमार जितेन्द्र को अपने साथ नगर में ले गए। उन्होंने बड़ी धूमधाम से उसे राजगद्दी पर बिठाया। क्या मित्र और शत्रु, सभी इस काम के लिए महाराज अशोक की तारीफ करने लगे। महाराज ने जितेन्द्र से कहा—प्रजा की भलाई के लिए ही मैंने तुम्हारे राज्य पर चढ़ाई की थी, सो तुम उसे सुखी रखना। यदि ऐसा करोगे, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।"

जितेन्द्र ने सिर झुकाकर महाराज की आज्ञा मान ली।

इसके बाद महाराज अशोक अपनी राजधानी में लौट आए। इस लड़ाई में दोनों तरफ के हजारों आदमी मारे गए और हजारों घायल हुए। हजारों लड़ाई से पैदा होने वाली बीमारियों के कारण मर गए! देश भर में हाहाकार मच गया। दीन-दुखिया की बुरी दशा का अशोक के हृदय पर बड़ा असर पड़ा। उनके हृदय में दया ने घर कर लिया। राजधानी में पहुँचते ही उन्होंने प्रतिज्ञा की कि मैं अब कभी दूसरे देशों पर चढ़ाई न करूँगा और न कभी किसी का खून ही बहाऊँगा। उन दिनों भारत में बौद्ध-धर्म का बहुत जोड़-तोड़ था। बौद्ध-धर्म लोगों को सिखलाता है कि कभी किसी को न सताओ। सब पर प्रेम और दया रखो। अशोक को बौद्ध-धर्म की बातें पसन्द आईं और वे तब से बौद्ध-धर्म मानने लगे। उन्होंने

बौद्ध-धर्म का प्रचार करने के लिए सीलोन, चीन और मिसर आदि दूर देशों में भी अपने उपदेशक भेजे थे। प्रजा की भलाई के लिये कितने ही काम किए थे। राज्य भर में पक्की सड़कें और उनके किनारे धर्मशालाएँ तथा कुएँ, बावलियां बनवा दी थीं। गरीब लोगों को मुफ्त में दवा मिलने के लिए स्थान स्थान पर औषधालय खुलवा दिये थे। प्रजा को सब तरह का आराम था, कोई किसी को न सता सकता था।

इसके सिवा अशोक ने चट्टानों और खंभों पर भी बहुत से उपदेश-पूर्ण लेख खुदवा दिए थे। ये लेख कई जगह आज भी ज्यों के त्यों पाए जाते हैं। मैसूर रियासत में एक चट्टान पर खुदा हुआ है—

"माता-पिता की आज्ञा मानो। सब जीवों की रक्षा करो। हमेशा सच बोलो। गुरू की पूजा करना शिष्य का धर्म है। सब लोगों को चाहिए कि अपनी जाति वालों और पुरा पड़ोस के लोगों पर प्रेम करें।"

दिल्ली में एक खंभे पर लिखा है—

"दूसरों को कभी न सताओ।"

(४)

राजकुमार कुणाल

महाराज अशोक के एक राजकुमार था। उसका नाम कुणाल था। उसमें बड़े अच्छे-अच्छे गुण थे, जिससे सभी लोग उस पर बहुत प्यार करते थे। कुणाल में सबसे बड़ा गुण यह था कि वह बड़ा ही पितृभक्त था—पिता की आज्ञा टालना तो वह जानता ही न था। कुणाल की माता मर चुकी थी, जिससे महाराज अशोक उसे और भी चाहने लगे थे। कुणाल बड़ा सुन्दर था—सबसे बढ़कर सुन्दर उसकी आँखें थीं। मानों उसमें

शर्बत भरा हुआ था। जो उसकी रसीली आँखें एक बार भी देख लेता, उसी की तबीयत रीझ जाती। कुणाल को गाने बजाने का बड़ा शौक था। जब वह सितार लेकर बैठ जाता और मीठे स्वर से अलापता, तब दसों दिशाएँ गूँज उठती थीं। जो उसके सितार की झंकार सुन लेता, जिसके भी कानों में उनकी सुरीली आवाज जा पहुँचती, वही अपने आपको भूल जाता।

कुणाल का विवाह कंचना नाम की एक कुमारी के साथ हुआ था। कुणाल जैसे सुन्दर थे, कंचना भी वैसे ही रूपवती थी। इतना ही नहीं, वह कुणाल के समान बड़ी गुणवती थी। बड़ी अच्छी जुगल जोड़ी थी। कुणाल कंचना को खूब चाहते थे, और कचना भी कुणाल को अपने हृदय में छुपाकर रखती थी। उनके दिन बड़े सुख से बीतते थे। जिसे देखो, वही उन दोनों के गुण गाता था। महाराज भी ऐसे अच्छे बहू बेटे को पाकर फूले नहीं समाते थे।

कुणाल की एक सौतेली माता थी। नाम था उसका तिष्य-रक्षिता। वह उमर में कुणाल से कुछ ही बड़ी थी। अशोक कुमार को जितना चाहते थे, वह उतना ही कुमार से जलती थी। परंतु कुमार तिष्यरक्षिता को माता के समान मानते और कभी उनकी आज्ञा न टालते थे। एक दिन तिष्यरक्षिता ने कुणाल को अपने महल में बुला भेजा। उन्होंने उसे प्रणाम किया और हाथ जोड़कर पूछा—माता जी, मेरे लिए क्या आज्ञा है? तब तिष्यरक्षिता ने उन्हें कुछ खोटा काम करने की आज्ञा दी। कुणाल ने हाथ जोड़ नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—'माता, मुझे क्षमा कीजिए। मैं कोई खोटा काम नहीं कर सकता।' तिष्य-रक्षिता ने बिगड़कर उनसे कहा—"कुणाल! जानते हो, मेरी आज्ञा न मानने की क्या सजा मिलेगी। तुम्हारी ये रसभरी आँखें मेरे पैरों के तले होंगी।" पर कुणाल माता की धमकी से डरे

नहीं; उन्होंने उसे जवाब दिया—'यह आपकी मरजी है।' यह कहते हुए वे तिष्यरक्षिता के महल से बाहर निकल गए। इसके बाद तिष्यरक्षिता ने कुछ न कहा। तब उन्होंने मन में सोचा, चलो यह अच्छा हुआ, माता जी का क्रोध ठंढा हो गया। पर, सचमुच में तिष्यरक्षिता का क्रोध ठंढा नहीं हुआ था। वह कुणाल को सजा देने का अच्छा सा मौका ढूँढ़ रही थी।

महाराज अशोक महारानी तिष्यरक्षिता को बहुत चाहते थे। वे कभी-कभी उससे राजकाज में भी सहायता और सलाह लिया करते थे। एक दिन महाराज के पास तक्षशिला के सूबेदार का पत्र आया। उसने लिखा था कि दुश्मन यहाँ बड़ी गड़बड़ी मचा रहे हैं, आप शीघ्र सहायता भेजिए। महाराज ने तिष्यरक्षिता से पूछा—"बताओ, तुम्हारी क्या राय है?" तिष्यरक्षिता ने सोचा, कुणाल को सजा देने का अच्छा मौका है। कुछ देर सोचकर महाराज को जवाब दिया—यदि आप मेरी बात मानें, तो कहूँ। कुणाल अब सयाना हो गया पर आप उसे राज-काज में लगाते नहीं। इस बार उसे ही तक्षशिला को भेजिए। इससे वह राज-काज भी सीखेगा और परदेश में जाने से उसका ज्ञान भी बढ़ेगा।

महाराज को तिष्यरक्षिता की बात पसन्द आ गई। उन्होंने कुणाल को तक्षशिला जाने की आज्ञा दी—कुमार को क्या उजर थी। वे दूसरे ही दिन राजकुमारी कंचना को साथ लेकर तक्षशिला की ओर रवाना हो गए। कुणाल कोरे राजकुमार ही न थे, बड़े वीर थे। उन्होंने तक्षशिला में पहुँचते ही दुश्मनों को ठीक कर दिया और आनन्द से रहने लगे। कुमार का स्वभाव मिलनसार था ही, इसलिए वे यहाँ भी सब से दिल मिल गए। सभी लोग उन्हें बहुत चाहने लगे।

अब इधर की बात सुनिए। महाराज अशोक तिष्यरक्षिता

को चाहते ही न थे, उस पर भरोसा भी बहुत करते थे। इसलिए राज्य के बहुत से काम तिष्यरक्षिता के महल में ही होते थे, कागज पत्रों पर मुहरें भी वहीं लगाई जाती थीं। महाराज के नाम की मुहर तिष्यरक्षिता के पास ही रहती थी। एक दिन तिष्यरक्षिता ने तक्षशिला के सूबेदार के नाम हुक्म लिखा "कुणाल ने राज्य का बहुत अपराध किया है इसलिए तुम फौरन उसकी आँखें निकलवाकर यहाँ भेज दो। खबरदार! उसमें गफलत न हो, नहीं तो तुम्हें भी सख्त सजा दी जायगी।" तिष्यरक्षिता ने इस हुक्म पर महाराज की मुहर लगाई और एक सवार के हाथ उसे सूबेदार के पास भेजवा दिया। महाराज को कुछ हाल मालूम न हुआ।

सूबेदार इस हुक्म को पढ़कर सन्नाटे में आ गया। वह सोचने लगा—राजकुमार तो बड़े अच्छे आदमी हैं। इनसे क्या अपराध होगा। नहीं मालूम, महाराज ने इन्हें क्यों ऐसी कठोर सजा दी। वह नहीं चाहता था कि कुमार को कुछ कष्ट दिया जावे; पर महाराज का हुक्म था। बेचारा करे तो क्या करे! उसने डरते-डरते राजकुमार को वह हुक्म दिखलाया। उन्हें उस दिन की तिष्यरक्षिता की बातें याद आ गईं। सूबेदार ने उनसे कहा—"आप घबड़ाइये नहीं। मैं आप को सताना पाप समझता हूँ। आप मेरा कहना कीजिए। चुपचाप यहाँ से चले जाइए। मैं कुछ छेड़छाड़ न करूँगा। मुझ पर जो बीतेगी, भुगत लूँगा। तब राजकुमार ने उससे कहा—"सूबेदार साहब, इन बातों को जाने दीजिये। महाराज मेरे पिता हैं, और तुम्हारे स्वामी। हम दोनों को ही उनकी आज्ञा माननी चाहिए। मेरी आपत्ति तुम अपने सिर क्यों लोगे! मैं तैयार हूँ, तुम महाराज की आज्ञा पूरी करो।" अब सूबेदार क्या करता,

लाचार हो उसने हत्यारे को बुलवाकर कुणाल की रसभरी आँखें निकलवा लीं।

खून में भींगे हुए राजकुमार महल पहुँचाए गए। प्यारे पति की यह दशा देखते ही कंचन पछाड़ खाकर गिर पड़ी। जब वह होश में आई, तब बिलख-बिलख कर रोने लगी। कुणाल ने उससे कहा—"राजकुमारी, रोओ नहीं। मैंने पिता की आज्ञा का पालन किया है जो भाग्य में बदा था, वही हुआ; अब रोने से क्या होगा? हम पिता के अपराधी हैं, अब हमें उनके महल में रहने का अधिकार नहीं। जल्दी यहाँ से चलने की तैयारी करो। आज से हम राह के भिखारी हैं।"

उसी दिन कुणाल ने वह महल छोड़ दिया। जो थोड़ी देर पहले प्रतापी अशोक के राजकुमार थे, अब राह के भिखारी थे, राजकुमार वीणा बजाते और गाते हुए गली-गली फिरते थे। दयालु लोग उन्हें जो कुछ देते, उसी से उनका पेट पलता। इन दुःख के दिनों में राजकुमारी कंचना ही उनके सुख का आधार थी। वे कुछ बरसों के बाद भूलते-भटकते अशोक की राजधानी पाटलिपुत्र में ही जा पहुँचे। जो उनकी दशा देखता, वही 'हाय-हाय' करता। शाम होते-होते वे महाराज के अस्तबल के पास पहुँचे। उन्होंने अस्तबल के पहरेदार से प्रार्थना की कि हमें आज रात भर यहाँ ठहर जाने दीजिए, सबेरा होते ही हम यहाँ से चले जायँगे। पहरेदार ने पहले तो उन्हें झिड़क दिया, पर पीछे से उनके गिड़गिड़ाने पर उसे दया आ गई। उसने उन्हें ठहरने की आज्ञा दे दी। अन्धे राजकुमार राजकुमारी के साथ अस्तबल के एक कोने में ठहर गए।

धीरे-धीरे आधी रात हुई। पहरेदार ने कुमार से कहा—सूरदास जी, एकाध चीज सुनाओ, तो रात कटे। कुणाल ने अपना सितार सँभाला और गाना शुरू किया—"नाथ, अब कब

सुधि लैहौ।" रात के सन्नाटे में वायु के लहरों में तैर-तैर कर वह मधुर स्वर दूर दूर तक जाने लगा। अशोक का राज-भवन अस्तबल से ही लगा हुआ था। उस समय वे नरम बिछौने पर लेटे-लेटे अपने प्यारे पुत्र की ही बातें सोच रहे थे। सन्नाटे को चीरती हुई राजकुमार की गुहार उनके कानों में पहुँची—"नाथ अब कब सुधि लैहौ।" महाराज उठ कर पलंग पर बैठ गए। बार बार वह आवाज कान में गूँजने लगी। आवाज पहचानी हुई थी, अब महराज अपने को न सँभाल सके। तीर के समान वे अस्तबल में आ पहुँचे और ज्योंही कुणाल ने गाया—'नाथ अब कब सुधि लैहौ!' त्योंही उन्होंने पुत्र को छाती से लगा लिया। कंचना ने महाराज के पैरों पर गिरकर कहा—'पिता, मेरे पति ने आपका क्या अपराध किया था, जो आपने उनकी दोनों आँखें छीन लीं ?" महाराज की आँखों से टपटप आँसू गिर रहे थे। पहरेदार चकित होकर यह तमाशा देख रहा था।

सवेरा हुआ। महाराज पता लगाने लगे कि किसके हुक्म से राजकुमार की यह दशा की गई। शीघ्र ही उन्हें मालूम हो गया कि यह शरारत तिष्यरक्षिता की है। उन्होंने हुक्म दिया कि तिष्यरक्षिता को जिन्दा ही गाड़ दो। तब कुणाल ने पिता से कहा—'महाराज, उन्हें क्षमा कीजिए। अच्छी हैं तो और बुरी हैं तो, हैं तो, मेरी ही माता!" कहते हैं कि राजकुमार के इतना कहते ही उनकी आँखें फिर ज्यों की त्यों हो गईं।

(५)

केशवादित्य

कोई १५०० बरस पहले की बात है, गुजरात में वल्लभीपुर नाम का एक नगर था। वहाँ शिलादित्य नाम के एक राजा राज्य करते थे। वे बड़े ही वीर और त्यागी थे। उनके

राज्य में प्रजा सब तरह से सुखी थी। एक बार शत्रुओं ने वल्लभीपुर पर चढ़ाई की। शिलादित्य भी उनसे खुलकर लड़े। पर दुश्मनों की बड़ी सेना के सामने उनका कुछ जोर न चला। शिलादित्य मारे गए। उनकी सब रानियाँ उनके साथ सती हो गईं। वल्लभीपुर पर शत्रुओं ने अधिकार कर लिया।

उस समय शिलादित्य की एक रानी, जिसका नाम पुष्पावती था, मायके गई थी। लड़ाई की खबर सुन वह थोड़े से सिपाहियों के साथ वल्लभीपुर को लौटी। वल्लभीपुर के पास पहुँचते-पहुँचते उसने सुना कि महाराज लड़ाई में मारे गये और नगर पर शत्रुओं का अधिकार हो गया है। यह सुनते ही पुष्पावती के पैरों के नीचे से मानों धरती खिसक गई। वह पति को बहुत चाहती थी। अब वल्लीपुर में उसके लिये क्या रखा था। उसने अपने गहने उतार डाले और वह सती होने के लिए तैयारी करने लगी।

पुष्पावती की कमलावती नाम की एक सखी थी। वह जाति की ब्राह्मणी थी। उसका विवाह पास के वीरनगर में हुआ था। पुष्पावती इस सहेली को बहुत चाहती और बहिन के समान उस पर विश्वास करती थी। कमलावती भी पुष्पावती को बहुत चाहती थी। पुष्पावती की विपत्ति का समाचार सुन वह दौड़ी आई। उसने देखा कि पुष्पावती गर्भवती है तब तो उसे बड़ी चिन्ता हुई। उसने पुष्पावती से कहा—"बहिन, मैं तुम्हें सती होने से नहीं रोकती। पर, इस समय तुम्हारा सती होना ठीक नहीं। तुम्हारे पेट में बच्चा है, उसकी हत्या करने का तुम्हें क्या अधिकार? एक तो तुम्हारे सती होने से वह बच्चा व्यर्थ ही मर जायगा, दूसरे पति के वंश का भी नाश हो जायगा। इससे बड़ा पाप होगा। मेरी बात मानो, पाप की गठरी सिर पर न लादो।

जब बच्चा पैदा हो जाय, तब सती हो जाना, मैं मना न करूँगी।" पुष्पावती ने कमलावती की राय मान ली।

वह कमलावती की सलाह से मलिया के पर्वत की एक गुफा में रहने लगी, जिससे किसी को यह पता न चले कि शिलादित्य की रानी है। कमलावती इतना करके अपने घर को लौट गई।

ठीक समय पर पुष्पावती के पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र का प्यारा मुखड़ा देखकर पुष्पावती का दुःख कुछ हलका हो गया। गुफा में उत्पन्न होने के कारण उसने पुत्र का नाम गोह रक्खा। जब गोह कुछ बड़ा हो गया, तब पुष्पावती ने कमलावती को बुलाया और उससे कहा—'बहिन बहुत दिन हो गए; अब मैं पति के पास जाती हूँ। इस पुत्र के पालन-पोषण का भार तुम पर रहा। माता के समान इसका पालन-पोषण करना। जब यह बड़ा हो जाय, तब किसी क्षत्रिय कन्या के साथ इसका विवाह कर देना और इसे इसके वंश का भी हाल सुना देना। शायद, यह फिर से अपने पिता के राज्य को प्राप्त कर लेवे।' इतना कहकर उसने पुत्र का मुँह चूमा और उसे कमलावती की गोद में दे दिया। फिर वह ईश्वर का नाम लेती हुई चिता में जा बैठी और सती हो गई।

कमलावती राजकुमार गोह को लेकर वीरनगर को चली गई और उसे छिपाकर रखने लगी। उसने माता के समान ही गोह का पालन-पोषण किया। जब गोह पाँच बरस का हो गया, तब कमलावती उसे पढ़ाने लिखाने लगी। पर गोह का मन पढ़ने लिखने में न लगता था। वह बड़ा चंचल था। खेल कूद में ही उसका मन खूब लगता था। जैसे-जैसे उसकी उमर बढ़ती जाती थी, वैसे-वैसे उसकी वीरता भी बढ़ती जाती थी। जो बालक उससे उमर में बड़े थे, वे भी उससे डरते थे। डर क्या चीज है—यह गोह जानता ही न था और जब उसे क्रोध

आ जाता, तब तो किसी की एक न सुनता था। वीर नगर के पास ही भीलों की बस्ती थी! जब गोह ग्यारह बारह बरस का हुआ, तब तो उसने भील-बालकों के साथ खूब मेल-जोल कर लिया। वह भील-बालकों के साथ चला जाता; और दिन-दिन भर जङ्गलों-पहाड़ों की हवा खाया करता। वहाँ वह तीर चलाता, हिरन आदि पशुओं का शिकार करता। इन कामों में उसे आनन्द खूब आता। भीलों के बालक भी गोह का बहुत आदर करते थे।

एक दिन की बात सुनिए! भील बालक एक खेल खेल रहे थे। खेल खेलते-खेलते उन्होंने इरादा किया कि किसी लड़के को राजा बनाना चाहिए। सब लड़के बोले—'बस, गोह ही सब से चतुर है, उसे ही राजा बनाओ!' फिर क्या था, सब भील-बालकों ने गोह को राजा बना दिया। एक लड़का दौड़ा और उसने अपनी उँगली से थोड़ा-सा खून निकाल कर गोह को तिलक दे दिया। फिर कुछ लड़कों ने गोह को कन्धों पर उठा लिया, कुछ ढोल बजाने लगे और सब के सब 'छोटे राजा की जय' बोलते हुए यहाँ वहाँ फिरने लगे। फिरते फिरते वे भीलों के राजा मण्डलिक के द्वार पर जा पहुँचे।

राजा मण्डलिक बूढ़ा हो गया था। उसके कोई लड़का न था। हाँ, उसका एक छोटा भाई था, पर बहुत दिन हुए, वह न जाने कहाँ निकल गया था। मण्डलिक ने उसे बहुत ढुँढ़वाया, पर उसका कुछ पता न चला। मण्डलिक को बड़ी चिन्ता रहती थी, कि मेरे बाद भीलों का राजा कौन होगा। लड़कों को 'छोटे राजा की जय' बोलते सुन वह बाहर निकला। उसे गोह का चेहरा इतना प्यारा मालूम हुआ कि उसने फ़ौरन गोह को अपने पास रख लिया और कहा—"गोह आज से मेरा बेटा हुआ। मेरे बाद यही भीलों का राजा होगा।"

इसके कुछ दिन बाद मगुलिक का वह खोया हुआ छोटा भाई अचानक आ पहुँचा। जब उसे मालूम हुआ कि बड़े भैया ने किसी लड़के को अपने पास रख लिया है, और उसे राजा बनाने का भी वादा किया है, तब तो उसे बड़ा रंज हुआ और उसे बड़ा क्रोध आया। मगुलिक ने उसे बहुत समझाया, आधा राज्य भी देने को कहा पर वह न माना। मारे रंज के उसने उसी दिन प्राण छोड़ दिए। भाई के मरने से मगुलिक को बड़ा दुःख हुआ, यहाँ तक कि वह मारे रंज के पागल जैसा हो गया। एक दिन बूढ़ा मगुलिक चुपचाप घर से निकल भागा। वह मारे रंज के जङ्गल-जङ्गल फिरने लगा और उसी रंज में मारे भूख-प्यास के उसके प्राण-पखेरू उड़ गए।

मगुलिक के लापता हो जाने से गोह को बड़ा रंज हुआ, उसने मगुलिक को बहुत ढुँढ़वाया, पर कुछ पता न चला। जब कई दिन हो गए, तब भील सरदारों ने गोह से कहा—'महाराज का तो कुछ पता नहीं चलता। अब आप राजा बनिए।' गोह ने जवाब दिया—'जब तक काका मगुलिक का पता नहीं लगता, तब तक मेरा राजा बनना कैसा? मैं तो राजा बनने का विचार भी करना पाप समझता हूँ!' इसके कुछ दिन बाद नगर के बाहर मगुलिक की लाश पाई गई। गोह को बड़ा रंज हुआ और उसने बड़ी धूम-धाम से मगुलिक की अन्तिम क्रिया की!

फिर भील सरदारों ने बड़ी धूमधाम से गोह को राजगद्दी पर बिठाया। गोह वीर और चतुर था ही, उसने धीरे-धीरे आस-पास के गाँवों पर अपना खूब दबदबा जमा लिया। फिर तो उसने यहाँ वहाँ भी धावा मारना शुरू कर दिया। कुछ ही दिनों में उसने अपना राज्य बढ़ा लिया और ईडर का प्रदेश भी जीत लिया। तब उसने अपना नाम बदल डाला। वह केशवादित्य के नाम से राज्य करने लगा।

केशवादित्य राजा हो गए, पर उन्होंने अपनी माता के समान भलाई करने वाली कमलावती देवी को नहीं भुलाया। वे कमलावती को बड़े आदर और प्रेम से ईडर में ले आए और उसे तथा उसके घरवालों को अपने पास ही रखने लगे। केशवादित्य अपने उपकारी और मित्र भीलों को भी बहुत चाहते थे।

इस प्रकार केशवादित्य ने अपने साहस और परिश्रम से इतना बड़ा राज्य जमाया; अपनी दया से, अपने प्रेम और न्याय से वे प्रजा के प्यारे बने और बहुत बरस तक उन्होंने सुख से राज्य किया।

(६)

चन्द्रापीड़ और चमार

भारतवर्ष के उत्तर में काश्मीर नाम का एक सुन्दर देश है। वहाँ लगभग बारह सौ बरस पहले चन्द्रापीड़ नाम के एक राजा राज्य करते थे। वे बड़े न्यायी थे—दूध का दूध और पानी का पानी कर देते थे। प्रजा का पालन इस तरह करते थे कि सभी खुशहाल रहते थे। किसी को शिकायत करने का मौका न मिलता था। इसलिये प्रजा भी उन्हें खूब चाहती और ईश्वर के समान मानती थी।

एक बार चन्द्रापीड़ ने एक देव मन्दिर बनाने का विचार प्रकट किया। उन्होंने एक अच्छी सी जगह पसन्द की और उसकी नाप-जोख के लिए कारीगर भेज दिए। कारीगरों ने नाप-जोख की। जब कारीगर जमीन नापते-नापते उसकी झोपड़ी के पास पहुँचे, तब तो वह बहुत बिगड़ा। उसने कारीगरों को झोपड़ी के पास नाप की डोरी तक न डालने दी।

अब कारीगर क्या करते, बेचारे लौट आए और उन्होंने

अपने अफसर को सब हाल सुनाया। अफसर ने चन्द्रापीड़ से उस चमार की शिकायत की। तब महाराज ने उसे जवाब दिया—"तो मैं क्या करूँ ? गलती तो तुम्हारी ही है। मुझे जगह दिखाने के पहले ही तुमने उसकी जाँच पड़ताल क्यों न कर ली ? अब या तो मन्दिर का काम बन्द कर दो, या दूसरी जगह चुन लो। मैं जबर्दस्ती दूसरे की जमीन लो छीनूँगा नहीं।"

इतने में द्वारपाल ने आकर महाराज को सूचना दी कि वह चमार आपसे मिलना चाहता है। महाराज ने उससे कहा—"तुम उससे जाकर कह दो कि मैं कल राजभवन के बाहर उससे मिलूँगा!"

दूसरे दिन ठीक समय पर चमार महाराज चन्द्रापीड़ से मिलने आया। महाराज राजभवन के बाहर गए और चमार से बोले—"क्या तुम्हीं उस झोपड़ी के मालिक हो ? धर्म के काम में क्यों विघ्न डालते हो। हम तुम्हें उसके बदले अच्छा-सा मकान दे सकते हैं, और जो बेंचना चाहो, तो तुम्हें मुँह-माँगा धन दिया जायगा!"

चमार ने निडर होकर चन्द्रापीड़ को जवाब दिया—"महाराज, मैं नीच जाति का गँवार आदमी हूँ। न तो मैं राज-दरबार के कानून जानता हूँ, और न मुझे बात करना ही आता है। यदि मुझसे कोई गलती हो जाय, तो मेरा अपराध क्षमा कीजिए। महाराज, एक बात सुनिए, मैं जाति का चमार हूँ, इसलिए आपके नौकर-चाकर मुझसे घृणा करते हैं! क्या मैं आदमी नहीं हूँ ? क्या मैं उस कुत्ते से भी गया बीता हूँ जिसे महाराज युधिष्ठिर, देवताओं के मना करने पर भी अपने साथ विमान में बिठा कर स्वर्ग को ले गये थे। साफ बात तो यह है कि न तो मैं उस कुत्ते से गया-बीता हूँ, और न आप ही महात्मा युधिष्ठिर से बढ़ कर धर्मात्मा हैं! खैर आप और आपके

नौकर-चाकर मुझे चाहे जो समझा करें, पर हूँ मैं ईश्वर की सन्तान।"

"अच्छा, अब झोपड़ी की बात सुनिए। जिस प्रकार आप को अपना यह राज-महल प्यारा है, उसी प्रकार मेरी झोपड़ी भी मुझे प्यारी है। उसी झोपड़ी में मेरा जन्म हुआ है, उसी में मेरा पालन-पोषण हुआ है, और उसी में मेरी इतनी उमर बीती है। उसी में रहकर मैंने सुख और दुःख के दिन देखे हैं! वह मुझे माता के समान प्यारी है! तब आपही कहिये, मैं अपनी उस प्यारी जन्म-भूमि पर गेंती फावड़े चलते कैसे देख सकूँगा? अपने घर के छिन जाने का कितना दुःख होता है, यह आप सहज में न समझ सकेंगे—इसे तो वही जानते हैं या जान सकते हैं जिनका घर किसी ने जबरदस्ती छीन लिया हो। इसी दुःख के कारण मैंने आपके आदमियों को अपनी झोपड़ी नहीं नापने दी। पर, एक बात है, यदि आप भलमंसी से मेरे यहाँ आते और मुझसे मेरी झोपड़ी माँगते, तो मैं खुशी से बिना कुछ लिए उसे आपको भेंट में दे देता और मुझे जरा भी दुःख न होता।"

इतना कह चमार महाराज को प्रणाम कर चलता बना! उसे ऐसी बेधड़की से बातें करते देख महाराज सन्नाटे में आ गए। उसकी समझदारी की बातें सुन कर वे मन ही मन खुश भी खूब हुए।

दूसरे दिन महाराज चन्द्रापीड़ उस चमार के द्वार पर पहुँचे और उन्होंने उससे मन्दिर बनाने के लिए नम्रता पूर्वक उसकी झोपड़ी माँगी! महाराज को अपने द्वार पर झोपड़ी माँगते देखकर चमार खुश हो गया और हाथ जोड़कर बोला—"महाराज! आप धन्य हैं। जैसा आपका नाम हो रहा है, आप वैसे ही धर्मात्मा हैं। आप अपनी साधारण प्रजा के सुख-दुःख

का भी ख्याल रखते हैं; तभी तो भगवान् ने आप को माना है। भगवान् आपका भला करे और आपके राज्य में हम लोग हमेशा इसी प्रकार सुख भोगते रहें। अब यह झोपड़ी आपकी है, आप खुशी से यहाँ मन्दिर बनवाइये।"

चमार इस प्रकार महाराज की तारीफ करता हुआ वहाँ से चला गया और दूसरी जगह घर बना कर रहने लगा।

(७)

बप्पा रावल

राजपूताने में उदयपुर नाम की एक रियासत है। इसका पुराना नाम मेवाड़ है। यहाँ शीसोदिया-वंश के राजपूत राजा राज्य करते हैं। यह राज्य बहुत पहले बप्पा रावल नाम के एक राजा ने जमाया था। उसकी कथा इस प्रकार है:—

उन दिनों, ईडर में नागादित्य नाम के राजा राज्य करते थे। उनके राज्य में भील बहुत बसते थे। वे हमेशा नागादित्य से लड़ाई-झगड़ा करते रहते थे। एक दिन नागादित्य शिकार खेलने गये। भील उनकी ताक में थे ही, मौका पाते ही उन्होंने रास्ते में नागादित्य का काम तमाम कर दिया। अब भील राजधानी की ओर बढ़े। ज्योंही राजधानी में यह खबर पहुँची, त्योंही वहाँ खलबली मच गई। नागादित्य के बप्पा नाम का एक तीन बरस का बालक था। विधवा रानी को उसके बचाने की बड़ी चिन्ता हुई और उपाय भी जल्दी निकल आया। नागादित्य के ब्राह्मण-पुरोहित ने रानी से कहा—'माता, आप चिन्ता न करें, जब तक मेरे शरीर में प्राण रहेगा, मैं राजकुमार की रक्षा करूँगा।' वह शीघ्र ही माँ-बेटे को नागेन्द्र नामक स्थान में ले गया और बड़ी चौकसी से उनकी रक्षा करने लगा। किसी को यह भेद मालूम न हुआ। यहीं बप्पा का पालन-पोषण हुआ।

समय की बात है, राजकुमार बप्पा को अपने बचपन के दिन चरवाहे के रूप में बिताने पड़े। चरवाहे ही उसके मित्र थे और चरवाहों के बीच ही उसके दिन कटते थे। सवेरा होते ही वह चरवाहों के साथ ब्राह्मणों की गाएँ चराने ले जाता। वहाँ गाएँ चरती रहतीं और चरवाहों के साथ गप्पें लड़ाया करता या खेल-कूद या लड़ाई का काम ही सीखा करता। बालीय और देव नाम के दो भील* बालकों से उसकी बड़ी मित्रता हो गई थी। अपनी मित्र-मण्डली में बप्पा सबसे चतुर और होशियार निकला। सभी मित्र उसका आदर करने लगे।

बप्पा बड़ा बलवान और वीर था। जो काम किसी चरवाहे से न होता, वह उसे आनन-फानन कर डालता। इसलिए सब चरवाहे उसे अपना अगुआ मानने लगे। एक दिन की बात सुनिये, श्रावण का त्यौहार था। बस्ती भर की सब लड़कियाँ झूला झूलने के लिए जङ्गल को गईं। यहाँ जब झूला बाँधने का समय आया, तब किसी के पास रस्सी न निकली; सभी अपनी अपनी रस्सियाँ घर ही भूल आई थीं। अब तो सभी इस चिंता में पड़ीं कि क्या किया जाय? पास ही चरवाहे गपशप कर रहे थे। एक लड़की जल्दी से उनके पास दौड़ी गई और बोली—"बिना झूले के हमारा आज का खेल बिगड़ रहा है, रस्सी हमारे पास है नहीं। यदि तुम झूला बाँध दो, तो बड़ी कृपा हो।" यह सुनकर बप्पा उसके साथ चला गया। वहाँ जाकर उसने उस लड़की से कहा—"मैं झूला तो बाँध दूँगा; पर तुम्हें मेरी एक बात माननी पड़ेगी। तुम मेरे साथ पहले विवाह का खेल खेलो। मैं इस झाड़ी के चारों ओर चक्कर लगाता हूँ, तुम मेरे साथ पीछे-पीछे भाँवर फिरो। भोली-भाली लड़की झट से राजी हो गई। विवाह के खेल के बाद बप्पा ने

---

* ये भील बालक अगुणापानेर नामक गाँव के रहने वाले थे।

झूला बाँध दिया और लड़कियाँ मनमाना झूल कर अपने अपने घर लौट गईं। वह लड़की, उस गाँव के सरदार की लड़की थी। उसने घर जाकर विवाह के खेल की बात नहीं सुनाई, क्योंकि वह इसे मामूली खेल समझती थी। इधर बप्पा ने भी अपने चरवाहे मित्रों से कह दिया कि देखो भाई, गाँव में इस खेल की चर्चा न करना, नहीं तो हम सब पर आफत आई समझो। गाँव में किसी को इस खेल का हाल मालूम न हुआ।

बप्पा की माता बड़ी चतुर थी। उसे इस बात की बड़ी चिन्ता रहती थी कि मेरे पुत्र के वे दिन लौटेंगे या नहीं। इसलिए वह बप्पा को रोज रोज राजपूतों की वीरता भरी कहानियाँ सुनाती और उसका हौसला बढ़ाया करती थी। जब बप्पा बड़ा हो गया, तब एक दिन माता ने उसे सब हाल सुना दिया और कहा—"बेटा, मैं अब तक इसी आशा से जी रही हूँ कि तुम बड़े होकर अपने शत्रुओं से बदला लोगे और अपने पिता का राज्य फिर से प्राप्त करोगे। अब वह समय आ गया है, मेरी आशा पूरी करो।"

उसी दिन बप्पा का हौसला दूना बढ़ गया। उसे राज्य प्राप्त करने की बड़ी इच्छा हुई। चित्तौर के राजा उसके मामा होते थे। बप्पा ने उन्हीं के पास जाने का इरादा किया। वह अपने मित्रों को लेकर चित्तौर पहुँचा और राजा की सेना में भर्ती हो गया! बालीय और देव बप्पा से बड़ा प्रेम करते थे। इस समय भी वे उसके साथ थे। उन्होंने बप्पा की सहायता से कभी मुँह न मोड़ा। यदि बप्पा को ऐसे सच्चे मित्र न मिलते तो वह शायद कभी राज्य न पाता।

बप्पा ने बड़े मौके से चित्तौर की यात्रा की थी, क्योंकि इस समय उस गाँव के सरदार की लड़की का विवाह होने वाला था। पुरोहित जी ने लड़की की जन्मकुण्डली देखकर कहा—

"अरे ! इसका विवाह तो हो चुका है !" यह सुनकर सब को बड़ा अचरज हुआ। तब लड़की ने भी रोते-रोते मात-पिता को उस दिन के खेल की बातें सुना दी। फिर क्या था; बड़ा हल्ला गुल्ला मचा। बप्पा की तलाश होने लगी, पर बप्पा वहाँ कहाँ था, वह तो कभी का चित्तौर जा पहुँचा था।

यहाँ चित्तौर की सेना में भरती होकर बप्पा और उसके साथियों ने बड़ी वीरता दिखाई। एक बार अकेले बप्पा ने ही बहुत से दुश्मनों को मार भगाया। दिन-दिन उसका दल बढ़ता गया। अंत में एक दिन उसने चित्तौर के राजा को गद्दी से उतार दिया। उसी दिन बालीय और देव ने उसे गद्दी पर बिठाया और मारे खुशी के अपना खून निकाल कर बप्पा को राजतिलक दे दिया। बप्पा रावल ने अपनी वीरता से दिन दिन चित्तौर का राज्य बढ़ाना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे उसने अपने पिता के ईडर राज्य पर भी अधिकार कर लिया। इस तरह उसने अपने दिन लौटाए और अपनी माता की इच्छा पूर्ण की।

बप्पा अपने मित्रों का—खासकर बालीय और देव का उपकार कभी नहीं भूला। उनके साथ रहने से वह अपने को सुखी मानता और भली-भाँति उनका आदर-सत्कार करता था बप्पा ने अपनी कृतज्ञता दिखाने के लिए यह नियम बना दिया कि चित्तौर के राणा को जब तक भील तिलक न दे लेंगे, तब तक राणा के राज्याभिषेक की रसूम पूरी नहीं हो सकती। इस समय भी बालीय और देव के वंशवाले राणा के राज्य में रहते हैं। जब चित्तौड़ के राजा को गद्दी दी जाती है, तब उन्हीं भीलों के वंशवाले उन्हें तिलक देते हैं। राणा भी इससे अपना मान समझते हैं। देव वंशधर राणा का हाथ पकड़ कर गद्दी पर बिठाते हैं और बालीय वंश वाले एक हाथ में दही और दूसरे में अक्षत लिए रहते हैं।

अगुणापनेर के भील लोग आज भी बिलकुल स्वतन्त्र हैं। वहाँ के आदमी कभी किसी के आधीन नहीं रहते। किसी राजा से उनका सम्बन्ध नहीं रहता। उसका सरदार भी राणा कहलाता है।

(८)

चाचकदेव

राजपूताने में बहुत से रजवाड़े हैं, उनमें से एक का नाम जयसलमेर है। सैकड़ों बरस पहले इस राज्य में एक बड़े बहादुर राजा हो गए हैं; उनका नाम है चाचकदेव। चाचकदेव को लड़ाई का ऐसा चस्का लग गया था कि उन्हें बैठे चैन न पड़ती थी। अपनी सारी उमर शत्रुओं से युद्ध करते करते ही बिता दी। इन युद्धों के कारण जहाँ चाचकदेव के बेहिसाब आदमी मारे गए थे, वहाँ उनका राज भी बहुत दूर पंजाब तक फैल गया था।

बुढ़ापे में चाचकदेव को बीमारी ने बहुत बुरी तरह आ पकड़ा! जितनी बन सकी दवादारू की गई, पर बीमारी ने पिण्ड न छोड़ा। चाचकदेव समझ गए—अब मेरी जीवन यात्रा पूरी हो चुकी, दवा-दारू कराना बेफायदा है। इस समय चाचकदेव को बड़ा रञ्ज था, कुछ इसलिए नहीं कि मर रहे थे। उन्हें रञ्ज इस बात का था कि मेरी सारी उमर तो लड़ते-भिड़ते बीती और मरते समय मैं खाट पर आ पड़ा, अब कायरों की तरह मर रहा हूँ!

राजपूतों का विश्वास है कि युद्ध क्षेत्र में शत्रु से लोहा लेते लेते—हथियारों की चोटें खाते-खाते मरने से मनुष्य को स्वर्ग-लोक मिलता है। इस विश्वास के सहारे क्षत्रिय लोग युद्ध-क्षेत्र में वह वीरता दिखलाते थे, जिसे देख कर शत्रु भी दाँतों तले

उँगली दबा लेते थे। इसी अनोखी वीरता के कारण क्षत्रियों ने संसार में यश और मान पाया है। चाचकदेव जीवन भर क्षत्रिय धर्म का पालन करते रहे; उस समय उन्हें स्वर्गलोक न मिल सका। जब बुढ़ापा आया, तब बीमारी ने उन्हें खाट पर ला पटका! इसीलिए उन्हें दुःख हो रहा था। उन्होंने सोचा—अहा! इस समय मैं युद्धक्षेत्र में तलवार चलाते-चलाते मरता तो कैसा अच्छा होता! मुझे स्वर्ग के फाटक खुले हुए मिलते।

धीरे-धीरे चाचकदेव की यह इच्छा बढ़ती ही गई। उन्होंने इरादा कर लिया कि जब मरना ही है तब युद्धक्षेत्र में ही क्यों न मरूँ! पर बैठे बिठाए किससे बैर बिसाया जावे? उस समय राज्य के चारों ओर शान्ति थी। कहीं कोई गड़बड़ी न थी, तब चाचकदेव से बिना मतलब कौन लड़ने आता? अन्त में चाचकदेव ने अपना एक दूत मुलतान के राजा के पास भेजा और उससे लड़ाई लेने की प्रार्थना की।

दूत मुल्तान के राजा की सभा में पहुँचा। उसने राजा से प्रार्थना की—श्रीमान! हमारे महाराज चाचकदेव जी खाट पर पड़े मृत्यु की घड़ियाँ गिन रहे हैं! उन्हें इस बात का बड़ा दुःख और डर है कि कहीं मैं इसी खाट पर पड़ा पड़ा कायरों की तरह न मर जाऊँ। उनकी बड़ी इच्छा है कि मैं रणभूमि में हथियार चलाते-चलाते शत्रु की तलवार से मारा जाऊँ और स्वर्गलोक प्राप्त करूँ। इसलिए वे आपसे लड़ाई लेने की प्रार्थना करते हैं।

दूत की बातें सुन कर सभी दरबारियों को बड़ा अचरज हुआ। राजा ने उसकी बात पर विश्वास न किया, उन्होंने उससे कहा—"तुम यह क्या कह रहे हो! जान पड़ता है चाचकदेव की नियत साफ नहीं, तभी वे धोखा देकर मुझे

ठगना चाहते हैं। मैं इस प्रकार बैठे बिठाए बिना मतलब की लड़ाई मोल नहीं ले सकता।"

तब दूत ने हाथ जोड़ कर उन्हें जवाब दिया—"राम राम महाराज आप मेरी बात पर भरोसा कीजिए। मैं राजपूत हूँ, प्राण रहते झूठ नहीं बोल सकता। सचमुच हमारे महाराज बहुत बीमार हैं। वे केवल मरते समय, वीरों की मौत मरना चाहते हैं। उनका कोई बुरा इरादा नहीं। वे केवल सात सौ वीर लेकर मैदान में आवेंगे। उन्होंने बड़ी आशा से मुझे आपकी सेवा मे भेजा है। आशा है आप हमारे मरते हुए महाराज की इच्छा पूरी करेंगे।

दूत ने इस बार, इस ढङ्ग से बातें की कि फिर मुलतान नरेश उसे झूठ न समझ सके। उन्होंने जवाब दिया—"अच्छी बात है। ऐसा ही होगा। मैं युद्धक्षेत्र में तुम्हारे महाराज का स्वागत करने के लिए तैयार हूँ।"

दूत ख़ुशी ख़ुशी जयसलमेर लौट आया। उसके मुँह से सब बातें सुन कर चाचकदेव को ऐसी ख़ुशी हुई, मानों उन्हें दूसरा नया राज्य मिला है। उनमें नया बल आ गया। उन्होंने अपने सदा के साथी सब वीरों को बुला भेजा और अपनी इच्छा कह सुनाई। उस समय के क्षत्री लड़ाई पर जाने की बात सुन सभी लड़ाई पर जाने की इच्छा प्रगट करने लगे। तब चाचकदेव ने उन लोगों में से, जो सदा उनका साथ देते रहे थे, और जिन्होंने आगे बढ़ने के सिवा कभी पीछे पैर न हटाया था, सात सौ वीर चुन लिए। उन वीरों ने फौरन अपने स्वामी की इच्छा पूरी करने तथा स्वर्ग में उनका साथ देने के लिए मरने मारने का पक्का इरादा कर लिया। बड़ी धूम से लड़ाई की तैयारियाँ होने लगीं।

इसके बाद चाचकदेव ने अपने राज्य का बखूबी बन्दोबस्त

कर, वीरों की मौत पाने के लिए कूच का डंका बजाया। उनकी सेना झूमती-झामती और हँसती अठलाती हुई मैदान की ओर चली। उधर मुल्तान-नरेश भी अपनी सेना साथ में ले मंजिल पर मंजिल तय करते हुए मैदान की ओर चले। लड़ाई के योग्य अच्छी सी जगह देख, उन्होंने डेरे डाल दिए। चाचकदेव भी उनसे दो कोस की दूरी पर जा ठहरे। उन्होंने स्नान किया और भगवान की पूजा करने के बाद अपने हथियारों की पूजा की।

पूजा-पाठ से छुट्टी पाकर चाचदेव ने दीन दरिद्रियों को दिल खोल कर दान दिया और तब लड़ाई का डंका बजाने की आज्ञा दी। डंके पर चोट पड़ते ही वीर राजपूत मतवाले जैसे हो उठे। झूमते-झामते हथियार सम्भाल कर वे मैदान की ओर चले। उधर मुल्तान-नरेश की सेना भी आगे बढ़ रही थी। थोड़ी ही देर बाद दोनों दलों का सामना हुआ। दोनों राजा बड़े प्रेम से गले मिले। चाचकदेव ने अपनी इच्छा पूर्ति करने के लिए मुल्तान-नरेश की बहुत बड़ाई की। फिर रणभेरी बजी, दोनों दल जूझ पड़े। चाचकदेव के वीरों ने बड़ी ही तेजी से मुल्तान की सेना पर धावा किया। इस समय चाचकदेव की बीमारी न जाने कहाँ भाग गई! उस मरते हुए बूढ़े में न जाने कहाँ का बल आ गया कि वह जवानों से भी बढ़-बढ़ कर हाथ फटकारने लगा। उधर मुल्तान की फौज भी बड़ी बहादुरी से लड़ रही थी। बड़ी देर तक युद्ध होता रहा। चाचकदेव की इच्छा पूरी हुई, वे अपने सात सौ वीरों के साथ, मुल्तान के भी दो हजार वीर ले हँसते-हँसते स्वर्ग चले गये। मुल्तान-नरेश भी प्रसन्न होते हुए अपनी राजधानी की ओर लौट पड़े।

जिन मुल्तान-नरेश ने मरते हुए चाचकदेव की इच्छा पूर्ण की थी; अफसोस की बात है, उन्हीं के साथ चाचकदेव के एक पुत्र ने बड़ी बेईमानी की। उसका नाम कुम्भा था। पिता के

मारे जाने की खबर सुन, वह मारे रञ्ज के पागल हो उठा उसने कहा—"मुल्तान-नरेश ने मेरे पिता को मारा है तो मैं भी उसे बिना मारे न छोड़ूगा।" वह एक आदमी को साथ ले मुल्तान-नरेश के डेरे की ओर चला। रात अँधेरी थी। मुल्तान की सब सेना चैन की नींद ले रही थी। मुल्तान-नरेश भी सो रहे थे। केवल उनके डेरे का पहरेदार जाग रहा था। कुम्भा मुल्तान-नरेश का वेष बना डेरे में जा घुसा और उसने सोते राजा का सिर काट लिया। इसके बाद कुम्भा अपने देश में लौट आया। इस पापी की जितनी निन्दा की जाय, थोड़ी है।

---

(६)

चण्ड की प्रतिज्ञा

राजपूताने में मेवाड़ नाम का एक राज्य है। बहुत दिन हुए, वहाँ महाराणा लाखा राज्य करते थे। उनके जेठे पुत्र का नाम था—चण्ड। राजकुमार चन्ड में वे सब गुण थे जो एक सच्चे राजपूत में होने चाहिये। वे बड़े सहनशील, विद्वान और चतुर भी थे। उनमें सब से बड़ा गुण था—बात की सच्चाई। जो बात मुँह से निकल गई, वह पत्थल की लकीर हो चुकी। चाहे दुनिया उलट जाय, और चाहे सूरज पूरब से पश्चिम में उगने लगे, पर चन्ड की बात न पलटेगी—न पलटेगी, उन्होंने यही कर दिखाया!

एक दिन की बात सुनिये। दरबार लगा हुआ था, इतने में वहाँ मारवाड़ के राजा रणमल का पुरोहित आया। महाराणा को आशीर्वाद देकर उसने कहा—"महाराज, मुझे मारवाड़ के महाराजा ने नारियल देकर आपकी सेवा में भेजा है। वे

आपके राजकुमार चन्ड के साथ अपनी राजकुमारी का विवाह करना चाहते हैं।" यह सुन महाराणा अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए मुसकुरा कर बोले—"मैं जानता हूँ कि आप इस सफेद दाढ़ी वाले के साथ, नारियल लेकर दिल्लगी करने न आये होगे।" राणा की बात सुन सभी दरबारी हँस पड़े।

इसी समय राजकुमार चन्ड भी राजसभा में आ पहुँचे। सब बातें सुन कर वे बड़ी दुविधा में पड़ गए। सोचने लगे—पिता जी जिस सम्बन्ध को थोड़ी देर के लिए अपने लिए समझ बैठे हैं, उसे मैं कैसे कर सकता हूँ। वह राजकुमारी तो अब माता के समान है, उसके साथ विवाह करना पाप है। ये सब बातें सोच कर उन्होंने कहा—"पिताजी, मैं यह विवाह न करूँगा, मारवाड़ की राजकुमारी मेरी माता है। आप ही यह विवाह कीजिए।"

यह सुनते ही दरबार में सन्नाटा छा गया। महाराणा का मुँह उतर गया, बड़ी दुविधा में पड़ गए। वे चन्ड का स्वभाव खूब जानते थे और उधर नारियल वापिस करने से राव रण-मल का अपमान होता था। वे तथा सभी दरबारी चंड को समझाने लगे पर चंड टस से मस न हुए। जो पुत्र कभी पिता की आज्ञा न टालता था, आज वही लाख समझाने पर भी रास्ते पर न आया। यह देख महाराणा मारे क्रोध के पागल हो उठे। अब क्या किया जाय? राजपूत लोग स्त्रियों का बहुत सम्मान करते हैं। राव रणमल तथा उनकी राजकुमारी को अपमान से बचाने के लिए महाराणा खुद नारियल लेने को तैयार हुए। उन्होंने गुस्से से काँपते हुए कहा- "चंड! तू नहीं जानता, तेरी इस जिद का नतीजा क्या होगा? राव रणमल की मान रखने के लिए मैं ही नारियल ले लूँगा, पर इससे तेरा

अधिकार जाता रहेगा। उस राजकुमारी से जो बच्चा होगा वही राजा बनेगा। अब भी समय है, मान जा!"

चंड का मुरझाया हुआ चेहरा खिल उठा। उन्होंने मुसकुरा कर उत्तर दिया—"पिता जी, आप इस बात की चिन्ता न कीजिए। मेरे और आपके बीच में भगवान हैं; मैं कभी राज्य की इच्छा न करूँगा। उसी राजकुमारी का पुत्र मेवाड़ का महाराणा बनेगा, और चंड सच्चे मन से उसकी सेवा करेगा। चंड की प्रतिज्ञा सुन सारे दरबार में सन्नाटा छा गया। दूसरे ही क्षण सब लोग धन्य-धन्य कह उठे। राव रणमल का दूत भी 'धन्य-धन्य' कह उठा। सचमुच में चंड का त्याग ऐसा ही था! राज्य का लोभ छोड़ देना सहज नहीं।

अन्त में होनहार होकर ही रहा। पचास बरस के बूढ़े महाराणा के साथ बारह बरस की राजकुमारी का विवाह हो गया। दो बरस बाद उस कन्या के एक पुत्र हुआ। राणा ने उसका नाम 'मुकुल' रक्खा। अभी मुकुल पाँच बरस का भी न हुआ था कि राणा को लड़ाई पर जाना पड़ा। उन्होंने सोचा सात बरस के इस लम्बे समय में चंड अपनी प्रतिज्ञा भूल गया होगा, इसलिए इसे राजा बना देना चाहिए। उन्होंने चंड को अपने पास बुलाया और उनसे कहा—"बेटा, मैं तो लड़ाई पर चला बुढ़ापे की उमर ठहरी, कौन जाने वहाँ से लौट सकूँगा या नहीं। मेरे बाद मुकुल का क्या होगा?" चंड ने जवाब दिया—"मुकुल मेवाड़ का महाराणा बनेगा। मैं उसकी सेवा करूँगा। मेरी प्रतिज्ञा पत्थर की लकीर है।" फिर महाराणा ने उनसे कुछ न कहा। वे बेफिक्र हो लड़ाई पर चले गए और वहीं मारे गए।

इधर राजकुमार चंड ने बड़ी धूमधाम से मुकुल को गद्दी पर बिठाया। मुकुल अभी बालक था, इसलिए राज्य के सब

काम चंड ही चलाते थे। उनका प्रबन्ध ऐसा अच्छा था कि सभी को आराम था। राज्य में चारों तरफ शान्ति थी, न कहीं लूट-मार होती थी न कोई किसी गरीब को सता सकता था। प्रजा रामराज्य लूटती थी।

अब मुकुल के मामा राव जोधा जी को राज्य लोभ ने सताया। उसने सोचा, मुकुल अभी नादान बालक है और उसकी माता ठहरी मेरी बहिन। वह मेरा कहना मानेगी ही। उससे कह-सुनकर चंड को निकलवा दूँगा; तब राज बेखटके मेरे हाथ आ जायगा। बस, वह अपने बाप रावल रणमल को साथ ले, चित्तौर में आ पहुँचा! बाप बेटे ने राजमहल में ही डेरा जमाया। वे चंड को निकलवाने का ही मौका ढूँढ़ने लगे। जोधा जी जब तब मुकुल की माता के सामने चंड की बुराई किया करता था।

एक दिन जोधा जी ने अपनी बहिन— मुकुल की माता से कहा, "बहिन, मैं इतने दिनों से तुम्हारे सामने चंड की बातें करता आ रहा हूँ। पर, तुम्हारी समझ में कुछ न आया। तुम बिलकुल भोली हो। अरी! चंड एकदम काला नाग है। देखना एक दिन वह तुम्हारे नन्हें से बच्चे को खा जायगा और राज्य का मालिक बन बैठेगा। मेरी बात मान लो, जितनी जल्दी हो सके, इस पापी को निकाल बाहर करो।" भोली भाली बहिन भाई के जाल में आ गई। उसने चंड को बुला भेजा। वह उन्हें फटकारती हुई बोली—चंड! मुझे तुम्हारी नियत पर भरोसा नहीं रहा। मैं खूब जानती हूँ कि तुम राज्य हथियाने के लिए कैसी चालें चल रहे हो।

यह सुनकर चंड के हृदय पर बड़ी चोट लगी। उन्होंने हाथ जोड़कर महारानी से कहा—'माता जी आपको भ्रम हो गया है। जरा सोचिए तो, यदि मुझे राज्य का लोभ होता, तो आज मैं आपको माता ही क्यों कहता, आप अपना राज सँभालिए।

आज से चित्तौर का भाग्य आपके हाथ में है। मेरा क्या—कहीं भी आध सेर आटा कमा खाऊँगा।"

इसके बाद चंड मेवाड़ को प्रणाम कर मालवे की ओर चले गए। वहाँ बादशाह ने उनको बड़े आदर से अपने यहाँ रखा। यद्यपि वहाँ पर चंड को किसी प्रकार का कष्ट न था, तो भी चित्तौर की चिन्ता उन्हें चैन न लेने देती।

इधर चंड के जाते ही रणमल और जोधा जी की बन पड़ी। रणमल मुकुल को गोद में लेकर गद्दीपर बैठते थे। यह देख, मेवाड़ वाले मन मसोस कर रह जाते थे। जोधाजी मेवाड़ वालों को दूर कर राज्य के बड़े बड़े पद मारवाड़ वालों को दे रहे थे। थोड़े ही दिनों में जहाँ देखो वहीं; क्या सेना में और क्या दरबार में मारवाड़ के आदमी दिखाई देने लगे! राजमाता तो चंड के चले जाने से प्रसन्न थीं; पर मुकुल की दाई फौरन मतलब समझ गई थी। वह बड़ी सावधानी से रणमल और जोधा जी के काम देखा करती थी। जब उसे उनकी बेईमानी का पूरा पता चल गया, तब उसने राजमाता से कहा—"महारानी! चंड को निकाल कर तुमने अपने लिए काँटे बो लिए हैं। जहाँ देखो, वहीं मारवाड़ के आदमी दिखाई देते हैं। चित्तौड़ वाले मारे-मारे फिर रहे हैं। राज्य जाने में अब देर नहीं है। अभी समय है, संभल जाओ।"

यह सुनते ही महारानी पिता के पास गईं और उनसे सब बातें पूछने लगीं। रणमल ने उन्हें साफ जवाब दिया—"राज्य हमारा और हमारे बाप का, रोटियाँ खानी हो, तो चीं चाप न करो! नहीं तो मुकुल से भी हाथ धो बैठोगी।" रणमल ने धोखे से चंड के छोटे भाई रघुदेव को मरवा डाला। अब तो महारानी और भी घबराईं। उनकी समझ में सब बातें आ गईं। फौरन चंड को पत्र लिखा—"बेटा, मेरी गलती का

ख्याल न करना। रणमल और जोधा जी राज्य हड़पने की कोशिशें कर रहे हैं। जितनी जल्दी बने, इन डाकुओं से अपने पिता के राज्य को बचाओ।" चंड ने जवाब भेजा—"माता धीरज से काम लो। दमन करने के बहाने आस-पास के गावों में अपने ईमानदार आदमी भेजा करो और कभी कभी खुद भी जाया करो। परन्तु दिवाली के दिन मुकुल के साथ मुझसे गोमुण्डा नगर में जरूर मिल जाना। फिर मैं सब काम बना लूँगा।"

चंड धीरे-धीरे अपने आदमी चित्तौर में भेजने लगे। वे नगर में छिपकर रहने और कितने ही सेना तथा पुलिस में काम करने लगे। उन्होंने चुपचाप बहुत से चित्तौरी राजपूतों को भी लड़ाई के लिए तैयार कर लिया। ठीक दिवाली के दिन महारानी मुकुल समेत गोमुण्डा में चण्ड से जा मिली। चण्ड अपने आदमियों के साथ चित्तौर की ओर चले। नगर के फाटक पर पहुँचते ही उन्हें पहरेवालों ने रोका! तब उन लोगों ने जवाब दिया—'हम महाराज के आदमी हैं। महाराज के साथ बाहर गए थे, अब लौट रहे हैं।' यह सुन पहरे वाले चुप हो रहे। चण्ड के आदमी नगर में जा पहुँचे।

इतने में रणमल के आदमियों को इन लोगों पर शक हो गया। फिर क्या था, लड़ाई छिड़ गई। चण्ड के आदमी खुल कर लड़ने लगे। चित्तौर वाले, मारवाड़ वालों को पकड़-पकड़ कर मारने लगे। चण्ड को लड़ाई में कई घाव लगे, पर उन्होंने बड़ी बहादुरी से किले के भट्टी सरदार को मार कर, किले पर अधिकार कर लिया। जोधा जी हार कर भाग गया।

इस समय रणमल शराब और अफीम के नशे में बेहोश पड़ा था। मौका देख एक क्षत्राणी ने उसे, उसी की पगड़ी से पलंग से जकड़ कर बाँध दिया। लड़ाई का हल्ला सुनते ही उसे

होश आ गया, वह पलंग समेत उठ खड़ा हुआ परन्तु इतने में एक राजपूत की गोली ने उसका काम तमाम कर दिया।

इस प्रकार राजकुमार चंड, चित्तौर को मारवाड़ी राठौरों के हाथ से बचा, फिर माता और मुकुल की सेवा करने लगे।

---

(१०)

हुमायूँ का साहस

मुगल बादशाह बाबर की मृत्यु के बाद उनके बड़े पुत्र हुमायूँ भारतवर्ष के बादशाह हुए। उस समय उनकी उमर केवल २३ बरस की थी। वे बड़े ही चतुर और साहसी थे। यद्यपि वे आलसी और लापरवाह थे, पर समय पड़ने पर उनका साहस बहुत बढ़ जाता था। वे तब तक आराम न करते थे, जब तक काम पूरा न हो जाता था। हुमायूँ के आलस और लापरवाही से कुछ लोगों ने फायदा उठाने का विचार किया। ऐसे लोगों में विहार के सूबेदार शेर खाँ मुख्य थे।

शेर खाँ जाति के अफगान थे। वे पहले बाबर के पास एक मामूली सिपाही थे। परन्तु अपनी योग्यता से बढ़ते-बढ़ते ऐसे ऊँचे दरजे पर पहुँच गए थे। बाबर उन पर बहुत प्रसन्न रहते थे। एक बार शेर खाँ बाबर के साथ खाना खा रहे थे, छुरी पास न होने से उन्होंने तलवार से रोटियाँ काट कर खाईं। यह देखकर बाबर ने कहा—शेर खाँ एक दिन बड़ा आदमी होगा, हुआ भी यही। शेरखाँ का इरादा था कि मौका मिले, तो दिल्ली की बादशाहत हाथ कर लूँ।

एक बार हुमायूँ ने बहुत-सी फौजें लेकर गुजरात पर चढ़ाई की। शेरखाँ ने देखा कि यह मौका बहुत अच्छा है। बस, उन्होंने दल-सहित सेना लेकर दिल्ली और आगरे पर

धावा बोल दिया। हुमायूँ ने भी यह हाल सुना। वे घबराये नहीं, उन्होंने फौरन अपने लश्कर की बाग आगरा और दिल्ली की ओर मोड़ दी। दोनों वीर थे। आपस में उनकी कई लड़ाइयाँ हुईं, सब लड़ाइयों में शेरखाँ की हार हुई। पर उस समय हुमायूँ का भाग्य दगा दे रहा था। शेरखाँ से उनकी अन्तिम लड़ाई कन्नौज के पास हुई। इस लड़ाई में बादशाह हुमायूँ की पूरी हार हुई। आगरा और दिल्ली पर शेरखाँ का अधिकार हो गया। हुमायूँ के सिर का राज-मुकुट, शेरखाँ ने छीन लिया और वे शेरशाह के नाम से दिल्ली के बादशाह बन बैठे।

जब दिन टेढ़े होते हैं, तब दोस्त भी दुश्मन हो जाते हैं! हुमायूँ का भी यही हाल हुआ। उनके मित्र उन्हें छोड़-छोड़कर जाने लगे। अधिक क्या, हुमायूँ के सगे भाई भी उनसे बदल गए। जब उन्होंने भाइयों से सहायता माँगी, तब सहायता देना तो दूर रहा, उल्टा वे हुमायूँ से लड़ने को तैयार हो गए। पर हुमायूँ ने साहस न छोड़ा।

इस समय हुमायूँ के चारों ओर दुश्मन ही दुश्मन थे। वे जहाँ जाते थे, वहीं दुश्मन उनका पीछा करते और उन्हें सताते थे। दुश्मन उन्हें क्षण भर भी चैन न लेने देते थे। आगरा और देहली से हाथ धोकर वे लाहौर गए। सोचा था, यहाँ कुछ चैन मिलेगा, पर दुश्मनों ने वहाँ भी उनका पीछा न छोड़ा। तब वे सिन्ध देश की ओर गए। उन्होंने मुल्तान और समुद्र के आस-पास के क़िलों पर अधिकार जमाने की बड़ी कोशिश की। पर किसी ने उन्हें सहायता न दी। उनके सारे परिश्रम पर पानी फिर गया। इस समय हुमायूँ को जान के लाले पड़ रहे थे, पर वे बड़ी ही हिम्मत से मुसीबतों का

मुकाबला कर रहे थे। उन्होंने एक क्षण के लिए भी साहस न छोड़ा।

अन्त में उन्होंने राजपूतों के दरवाजे खटखटाये। कहते हैं कि राजपूत शरण में आए हुये का त्याग नहीं करते। पर हुमायूँ का तो भाग्य ही फूट रहा था, किसी राजपूत राजा ने उन्हें कोई आश्रय न दिया। जब वे जोधपुर राज्य में पहुँचे और वहाँ के राजा माल देव राठौर से उन्होंने आश्रय पाने की प्रार्थना की, तब उसने उनका बड़ा अनादर किया। यहाँ तक कि वह उन्हें पकड़ लेने की कोशिश करने लगा। सिर पर बड़ी भारी आपत्ति थी। पर, हुमायूँ ने साहस न छोड़ा, वे चतुराई से, मालदेव के फन्दे से निकल भागे।

इस समय हुमायूँ के चारों ओर निराशा का अन्धकार था। कहीं से सहायता मिलने की रत्ती भर आशा न थी! पर साहसी हुमायूँ राजपूताने के उस भारी रेतीले मैदान को बड़ी हिम्मत से पार कर रहे थे। हुमायूँ के सरदार और सिपाही एक एक करके उनका साथ छोड़ते जाते थे। कई तो उनसे इतने नाराज हो रहे थे कि एक दिन जब हुमायूँ ने एक सिपाही से उसका घोड़ा माँगा; तब उसने साफ नाहीं कर दी! हुमायूँ पैदल चलने लगे! उफ! जो एक दिन इतने बड़े देश का स्वामी था, जिसके जरा से इशारे पर हजारों सिर कलम होने को तैयार रहते थे, आज वही प्रतापी बादशाह अनाथ की नाई उस रेतीले मैदान में भटक रहा था! पर, हुमायूँ ने साहस को हाथ से नहीं जाने दिया!

उस रेतीले मैदान में राज-परिवार के लोगों की दशा बहुत बुरी हो उठी! हुमायूँ की प्यारी सुकुमारी बेगमें, जो किसी दिन अच्छे राजमहलों में रहती थीं, हजारों दास-दासी जिनके सामने हाथ बाँधे खड़ी रहती थीं, छप्पन-भोजन करने पर

जिनके पेट नहीं भरते थे, आज उस रेतीले में मैदान भटक रही थीं। भूख प्यास और गर्मी के मारे उनका बुरा हाल हो रहा था। कपड़े गर्द से भर रहे थे, और गुलाब के फूल के समान कोमल मुखड़े कुम्हला रहे थे। उस दशा में सभी स्त्रियाँ, सभी बच्चे घबड़ा उठे। बेचारे हुमायूँ की आँखें भर आईं। पर धन्य था उन्हें; उन्होंने फिर साहस न छोड़ा।

सिंध देश के सौरा राजा को हुमायूँ की इस दशा पर बड़ी दया आई। उसने बड़े आदर से हुमायूँ को अपने यहाँ रखा। वहीं, अमरकोट के किले में हुमायूँ के महाप्रतापी पुत्र अकबर का जन्म हुआ! इस समय पुत्र पैदा होने की खुशी में जलसा करने के लिए हुमायूँ के पास कुछ न था। तब उन्होंने सब लोगों को थोड़ी-थोड़ी कस्तूरी ही बाँट कर खुशी मनाई।

सिंध में कुछ ठीक-ठाक न देख उन्होंने ईरान देश की राह ली। ईरान के बादशाह ने उन्हें बड़े प्रेम और आदर से अपने यहाँ रखा। किसी तरह हुमायूँ के दिन बीतने तो लगे; पर, उस दूर देश में भी वे भारतवर्ष को न भूल सके। भारत का राज्य पाने के लिए, वे वहाँ भी कुछ न कुछ करते ही रहे।

उन दिनों ईरान के बादशाह थे—शाह तहमास्प। शाह तहमास्प शिया और हुमायूँ सुन्नी मुसलमान थे। तहमास्प ने हुमायूँ से कहा—'यदि आप शिया हो जावें, तो भारतवर्ष जीतने के लिए मैं जरूर आपकी मदद करूँगा। पहले तो हुमायूँ टालमटूल करते रहे, पर जब देखा कि तहमास्प की बात माने बिना काम न चलेगा, तब इन्होंने शिया धर्म ग्रहण कर लिया। इससे शाह बहुत खुश हुए। उन्होंने हुमायूँ को दस-बारह हजार सिपाही दिए, और उनसे कहा—इन आदमियों की सहायता से आप अपना खोया हुआ राज्य फिर से हासिल करने की कोशिश कीजिए।

उस सेना की सहायता से हुमायूँ ने बहुत जल्दी काबुल पर अधिकार जमा लिया। फिर शीघ्र ही काश्मीर को जीत कर वहाँ डेरा डाल दिया। इस समय दिल्ली में शेरशाह का पोता सलीमशाह राज्य कर रहा था। वह बड़ा नालायक बादशाह था, राज्य में बड़ी गड़बड़ी मच रही थी। हुमायूँ ने यह हालत देखी, तो अपने लश्कर की बाग भारतवर्ष की ओर मोड़ दी। दस-बारह बरस मुल्कों की धूल छानने के बाद हुमायूँ, फिर भारतवर्ष में आए।

सरहिन्द के पास पठान बादशाह से हुमायूँ की मुठभेड़ हुई। रणभेरी के प्रचण्ड नाद से सरहिन्द की भूमि गूंज उठी। मार काट का बाजार गरम हो उठा। इस लड़ाई में हुमायूँ के बारह बरस के पुत्र अकबर ने ऐसी बहादुरी दिखाई कि लोग दांतों के तले उंगली दबाने लगे। अकबर की उस प्रचण्ड वीरता से समुद्र के समान उमड़ी हुई पठान सेना तीन-तेरह हो गई। हुमायूँ फिर भारतवर्ष के बादशाह हुए। परिश्रम और साहस से क्या नहीं हो सकता? यदि उन विपत्तियों से घबरा कर हुमायूँ साहस छोड़ बैठते तो आज वह दिन कहाँ देख पाते?

दुबारा भारतवर्ष का राज्य पाने के छै महीने बाद महल की सीढ़ी पर से पैर फिसल जाने के कारण हुमायूँ की मृत्यु हो गई।। यद्यपि वे फिर बहुत दिन तक राज्य सुख नहीं भोग सके, पर उन्हीं के परिश्रम से, उनके वंश की जड़ भारत में जम गई।

(११)

अकबर और शूरसिंह

राजपूताने में जयपुर नाम का एक अच्छा राज्य है। कोई ३५० बरस पहले वहाँ भगवन्तदास नाम के राजा हो गए हैं। वे हमेशा दिल्ली के नामी बादशाह अकबर के दरबार में रहा करते थे। उनके पुत्र का नाम था—शूरसिंह। जब शूर-सिंह तेरह बरस के हुए, तब वे भी पिता के साथ बादशाह की सेवा में रहने लगे। शूरसिंह छुटपन से ही बड़े निडर, हिम्मत-वर और बहादुर थे। शूरसिंह ज्यों-ज्यों बड़े होते जाते थे, त्यों-त्यों उनकी बहादुरी भी बढ़ती थी। सभी उनकी बहादुरी की तारीफ करते थे। बादशाह ने भी खुश होकर उन्हें अपनी फौज में ऊँचा दर्जा दे दिया।

अच्छा, अब शूरसिंह की बहादुरी की एक मजेदार कहानी सुनिए।

एक दिन कुमार शूरसिंह बादशाह के दरबार को जा रहे थे। रास्ते में उन्हें बादशाह का एक मस्त हाथी मिला। बादशाह उसे बहुत चाहते थे। उस दिन हाथीराम का मिजाज बहुत बिगड़ रहा था! आप रास्ते में बहुत ऊधम मचा रहे थे। लोग अपनी-अपनी जान लेकर इधर-उधर भाग रहे थे। बेचारे महावत की अकल हैरान हो रही थी। कुछ डरपोक लोगों ने शूरसिंह से कहा—"महाराज, उधर से न जाइए! जान खतरे में पड़ जायगी। बहुत बुरा हाथी है, अब तक उसने कई आदमियों का सफाया कर दिया है।"

कुमार ने मुसकुराकर उन्हें जवाब दिया—"वाह साहब! यह तो आपने खूब सुना है। क्या हाथी के डर से रास्ता चलना

भी छोड़ दूँ ? जरा मैं भी तो देखूँ कि हाथीराम जी कैसे बिगड़े दिल हैं।" यह कह कर कुमार महाशय छाती ताने आगे बढ़े, लोग रोकते ही रह गए। कुमार को देखते ही हाथी उनकी तरफ झपटा। यह देखते ही कुमार ने अपना भाला ताना और कहा—"आओ भाई आओ, मैं तुमसे मिलने को तो आही रहा हूँ! अभी तुम्हारी मस्ती दूर किए देता हूँ।" ज्यों ही हाथी उनकी बराबरी पर आया, त्योंहीं उन्होंने उसके मस्तक को ताककर बड़े जोर से भाला चलाया। भाले का पूरा फल हाथी के मस्तक में घुस गया। बड़े जोर की चिग्घाड़ सुनाई दी। हाथी मरकर जमीन पर गिर पड़ा। शूरसिंह खुशी-खुशी दरबार में पहुँचे।

बेचारा महावत भी सिर पीटता हुआ दरबार में पहुँचा। उसने बादशाह को हाथी के मारे जाने की खबर सुनाई। बादशाह को ऐसे मस्त हाथियों का बड़ा शौक था, वे इस हाथी को बड़ा प्यार करते थे। उसके मारे जाने की खबर सुनते ही बादशाह को बड़ा क्रोध आया। मारे गुस्से के वे लाल-लाल आँखें कर शूरसिंह की तरफ देखने लगे। शूरसिंह की जान सूख गई। पर, शूरसिंह जैसे बहादुर थे, वैसे ही चतुर भी थे। फौरन हाथ जोड़, नम्र होकर बादशाह से बोले—"हुजूर, जब तक मैं आपके दर्शन नहीं कर लेता, मुझे खाना-पीना कुछ भी नहीं सुहाता। सच जानिए, मैं केवल आपके दर्शन के लिए ही यहाँ तक आता हूँ। वह हाथी तो केवल घास खाता था, पर मैं तो हुजूर का नमक खाता हूँ। यदि मैं उस घास खाने वाले पहाड़ से डर जाता, तो हुजूर के दर्शन कैसे कर पाता ? फिर तो मुझे भूखों ही मरना पड़ता। तब कल लड़ाई में मैं क्या बहादुरी दिखलाता ? हुजूर ही विचार

कर सकते हैं, कि आपके दर्शन कर मैंने बुरा काम किया या अच्छा ?

शूरसिंह की ये बातें सुनकर बादशाह को हँसी आ गई। उन्होंने शूरसिंह से कहा—"तुमने कुसूर तो जरूर किया है, पर हो बड़े चतुर। अच्छा, जाओ, मैंने तुम्हारा कसूर माफ किया।" इतना ही नहीं, बादशाह ने उनकी वीरता के लिए उन्हें एक सुन्दर हाथी भी इनाम में दिलवाया, जिसकी सजावट का सब सामान सोने का था। बादशाह ने उनका दर्जा भी बढ़ा दिया। इस प्रकार शूरसिंह ने अपनी वीरता भी दिखला दी और मीठी बातों से बाशाह का क्रोध ठंडा कर इनाम भी फटकार लिया।

एक बार काबुल के सूबेदार मिर्जा मुहम्द ने भारतवर्ष पर चढ़ाई कर दी। ये मिर्जा साहब बादशाह अकबर के भाई थे। उनके एक गुलाम ने, जिसका नाम शादमा था, नीलाब का किला घेर लिया और रावलपिण्डी तक लूटमार मचा दी। तब बादशाह अकबर ने फौज के साथ कुमार शूरसिंह को वहाँ भेजा। कुमार ने नीलाब का किला घेर लिया। खूब कसकर लड़ाई हुई। इस लड़ाई में कुमार ने बड़ी बहादुरी दिखलाई। शामदा भाग गया। कुमार ने नीलाब के किले पर फिर अकबर का झण्डा चढ़ा दिया। तब बादशाह ने कुमार का बड़ा आदर किया और उन्हें अच्छे-अच्छे इनाम दिए।

(१८)

जयमल और पत्ते की बहादुरी

बादशाह अकबर ने एक एक करके राजपूताने के सब राज्यों पर अधिकार कर लिया, वहाँ के सब राजा बादशाह के दरबार में हाजिरी देने लगे। फिर भी एक राज्य बाकी रह गया, जिस पर न तो अकबर का अधिकार हो सका, और न वहाँ के राजा ने अकबर के सामने सिर ही झुकाया। इसका कारण यह था कि यहाँ के आदमी वीर होने के साथ ही बड़े देशभक्त और स्वाभिमानी थे। इस राज्य का नाम था—मेवाड़ या चित्तौर। अकबर ने दो-एक बार चित्तौर पर अधिकार जमाने की कोशिश भी की, पर उनकी इच्छा पूरी न हो सकी। वे बराबर इस बात की चिन्ता में रहते थे कि किसी प्रकार चित्तौर के किले पर हमारा झंडा फहराने लगे।

उन दिनों चित्तौर का महाराणा था—उदयसिंह। वह स्वभाव का बड़ा कायर और डरपोक था। अकबर ने एक बार बड़ी धूमधाम से मेवाड़ पर चढ़ाई की। उनके साथ इतनी फौज थी कि दो ढाई कोस के गिर्द में उनके डेरे पड़े थे। राणा ने जो यह हाल देखा, तो वह दुम दबाकर भाग निकला। चित्तौर की सेना बिना राजा के रह गई। अब अकबर से कौन लोहा ले? सरदार-सामन्तों ने इरादा किया कि राणा भाग गया है, तो कुछ चिन्ता नहीं, हम खुद चित्तौर के लिए अपना खून बहावेंगे। चन्दावत सरदार सहीदास, राव दूदा, राव रेवल, सौनगढ़ सरदार, ईश्वरदास राठौर, करमचंद कछवाहा, आदि नामी नामी सामन्त अपनी अपनी सेनायें

लेकर चित्तौर की रक्षा करने आ पहुँचे। मुगल सेना समुद्र के समान उमड़ती हुई चित्तौर की ओर चली और बन्दूकें चला-चलाकर राजपूतों के ढेर लगाने लगी। वीर सहीदास 'सूर्यद्वार' नामक फाटक की रक्षा कर रहा था। उसने बड़ी तेजी से युद्ध किया, युद्ध करते-करते वह वहीं गिर गया, पर पैर पीछे न हटाया।

परन्तु इस युद्ध में, दो बालकों ने सबसे बढ़कर वीरता दिखलाई थो। उन वीर बालकों के नाम थे—जयमल और पत्ता। ये बहादुर बच्चे किसी के कहने सुनने से मैदान में नहीं आये थे। उनकी देशभक्ति और स्वदेश रक्षा की प्रबल इच्छा ही उन्हें मैदान में खींच लाई थी।

जयमल वेदनौर का सामन्त और राठौर क्षत्रिय था। पत्ता कैलवाड़े का सामन्त था। वह चन्दावत बंश में उत्पन्न हुआ था। उस समय उसकी उमर केवल सोलह बरस की थी। अपने वंश में वही अकेला था। उसकी माता जानती थी, कि इस बच्चे के मरते ही मेरे वंश का नाम मिट जायगा। तो भी उसने खुशो से पुत्र को मैदान में जाने की आज्ञा दे दी। उसे इसी बात की प्रसन्नता थी कि मेरा बेटा देश की रक्षा करते करते वीरों की मौत मरेगा। उसने पत्ते को पीले कपड़े पहना कर लड़ाई के मैदान में भेज दिया।

माता ने पत्ते को लड़ाई में भेज तो दिया, पर इतने से ही उसका जी न माना। उसने सोचा, मैं भी देश की रक्षा के लिए अपने प्राण दे दूँगी बस, वह जिरह बख्तर पहन हथियारों से लैस हो, मैदान की ओर चल पड़ी। उसने अपने साथ अपनी कम उमर बहू (पत्ते की स्त्री) को भी ले लिया। यह देख और भी बहुत-सी वीर क्षत्राणियाँ उनके साथ हो गईं। धीरे-धीरे वे सब स्त्रियाँ वीरता के गीत गाती हुई पहाड़ से नीचे उतरीं और बिजली के समान बादशाही सेना पर टूट

पड़ीं। उनकी वीरता देख क्या शत्रु क्या मित्र सभी 'वाह वाह' करने लगे। उनके पैने बाणों से कितने ही मुग़ल वीरों की छातियाँ छिद गईं; उनके तेज भाले कितने ही मुग़ल वीरों की छातियाँ छेद कर पार हो गए; उनकी बिजली के समान तेज तलवारों ने कितने ही मुग़ल वीरों के सिर काट गिराये। अंत में उन सब वीर नारियों ने भी एक-एक करके वहीं प्राण त्याग दिए। उनकी वीरता देख मुग़ल सेना सन्नाटे में आ गई।

बहादुर सहीदास के मरते ही बालक पत्ते ने 'सूर्यद्वार' की रक्षा का भार लिया। थोड़ी ही देर पहले वह देख चुका था, कि उसकी माँ बहनों ने कैसी वीरता से युद्ध किया था और कैसे साहस से अपने प्राण त्याग किये थे। इसलिए वह अपने साथियों को ले, वज्र के समान शत्रुओं पर टूट पड़ा। उस दिन पत्ते ने जो बहादुरी दिखलाई, जैसी तेज़ी से युद्ध किया, उसका वर्णन नहीं हो सकता। जहाँ को पत्ते की तलवार चल जाती थी, शत्रु गाजर-मूली की तरह कटते जाते थे। उस दिन पत्ते की तलवार सैकड़ों शत्रुओं का लहू पी गई। और क्या, पत्ते की दिलेरी और बहादुरी देख खुद अकबर दाँतों तले अँगुली दबाकर रह गये। अंत में युद्ध करते करते वह वीर बालक लहू लुहान हो गया और थक कर गिर पड़ा। परन्तु मरते-मरते भी पत्ते की तलवार न रुकी। उधर वह प्राण छोड़ रहा था इधर उसकी तलवार शत्रु के गले से लग रही थी।

अब जयमल की करतूत सुनिए। उसने क़िले की रक्षा का भार ले रखा था। वह बड़ी चतुराई से युद्ध करता था। उसका विचार था कि हमारी हानि तो कम हो, पर शत्रु की हानि पूरी हो, और उसे परेशानी भी खूब उठानी पड़े। वह झपट झपट कर सब काम देखता और जहाँ सहायता की ज़रूरत होती, फौरन पहुँचता था। उसकी चतुराई से अकबर को बड़ी

परेशानी उठानी पड़ी। एक दिन जयमल रात को मशाल के उजेले में गोलों की मार से टूटी हुई किले की दीवाल बनवा रहा था। उस पर बादशाह की नजर पड़ गई। वे उसे पहचान गए। उन्होंने बन्दूक उठाई और निशाना साध कर गोली दाग दी। गोली भरपूर बैठी। जयमल वहीं गिर गया। चित्तौर की होने वाली दशा सोच कर उसकी आँखों से दो बूँद आँसू गिर पड़े। मरते-मरते उसने जौहर व्रत करने की आज्ञा दी! शीघ्र ही चिता सजाई गई और उसमें हजारों स्त्रियाँ जल मरीं। सबेरा हुआ। आठ हजार क्षत्रिय वीर केसरिया कपड़े पहन, किले के फाटक खोल मुगलों पर टूट पड़े। घोर युद्ध हुआ। हजारों मुगल मारे गए। अन्त में वे सब राजपूत भी उन्हीं के साथी हुए। चित्तौर पर अकबर का अधिकार हो गया। उस समय चित्तौर की दशा मरघट के समान हो रही थी। यदि उस दिन जयमल इस प्रकार धोखे से न मारा जाता, तो इतनी जल्दी चित्तौर पर अकबर का अधिकार न हो पाता।

जयमल और पत्ते की वीरता से अकबर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उन दोनों वीरों की यादगार रखने के लिए, उनकी मूर्तियाँ हाथी पर बनवा कर अपने किले में रखवाई। मेवाड़ में शाम के समय आज भी वहाँ की स्त्रियाँ जयमल और पत्ते की वीरता के गीत गाती हैं। पुरुष सबेरे उठ कर उनका नाम लेते हैं। जब तक मेवाड़ और चित्तौड़ नाम रहेगा, तब तक इस संसार में जयमल और पत्ते का नाम बना रहेगा।

(१३)

पृथ्वीराज का पत्र

महाराणा उदयसिंह के बाद उनके जेठे राजकुमार प्रतापसिंह मेवाड़ के राजसिंहासन पर बैठे। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि मरते-मरते मर जाऊँगा पर अकबर को सिर न झुकाऊँगा। महाराणा ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन खूब किया। वे पच्चीस बरस तक अकबर से लोहा लेते रहे। अकबर ने एक-एक करके मेवाड़ के सब किले अपने अधिकार में कर लिए। पच्चीसवें बरस तक बन-बन भटकते रहे; भूख-प्यास के कष्ट सहा किए, अपने बाल बच्चों को रोटी के साथ एक-एक टुकड़े के लिए तरसते रहे, पर उन्होंने अपनी टेक न छोड़ी। सारा भारत उनके इस गुण के गीत गाता था।

जंगलों में प्रताप के परिवार की रक्षा भील लोग करते थे; उन्हें भोजन के लिए बड़ा कष्ट उठाना पड़ता था। कभी कभी तो मुसलमानों के आ जाने से पका-पकाया भोजन भी छोड़ कर भागना पड़ता था। कभी भोजन मिलता ही न था और मिलता भी था, तो बहुत थोड़ा और वह भी घास पात के बीज। एक दिन महारानी ने घास के बीज की कुछ रोटियाँ पकाईं। हर एक आदमी को एक एक रोटी मिली। सब ने शाम के लिए अपने-अपने हिस्से की आधी रोटी रख छोड़ी। महाराणा की छोटी कन्या अपने हिस्से की आधी रोटी खा रही थी, इतने में वहाँ एक बन-बिलाव आया और कन्या के हाथ से रोटी छीन कर भाग गया। बेचारी कन्या बिलख-बिलख कर रोने लगी।

महाराणा प्रताप पास ही हरी घास पर लेटे हुए लड़ाई की

बातें सोच रहे थे। लड़की का रोना सुन उनका ध्यान टूट गया। उनकी आँखों में आँसू भर आए। घर वालों के प्रेम और कष्ट ने उनका हृदय मथ डाला। वे सोचने लगे—मेरी इस टेक को धिक्कार है। मेरी इस टेक के पीछे ये नन्हें नन्हें बच्चे दाने-दाने को तरस रहे हैं। मेवाड़ के महाराणा के बच्चे घास-पात खावें—इससे बढ़कर दुःख की बात क्या हो सकती है? मैंने यह बेमतलब की टेक न की होती, तो आज ये बच्चे राजमहल में रहते और सुख से तरह-तरह के भोजन पाते। मेरे पीछे वे बच्चे क्यों भूखे प्यासे मरें। प्रताप ने उसी दिन अकबर को पत्र लिखा कि मैं आपकी आधीनता मंजूर करता हूँ, कृपा कर मेरा कष्ट दूर कीजिए।

अकबर कुछ मेवाड़ का राज्य नहीं चाहते थे; चाहते थे केवल इतना ही, कि महाराणा मुझे अपना बादशाह मान लेवें। आज उनकी यह इच्छा पूरी हो गई। उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। अकबर ने महाराणा का पत्र पृथ्वीराज राठौर को दिखलाया। पृथ्वीराज बीकानेर नरेश के छोटे भाई थे और अकबर की नौकरी करते थे। महाराणा का पत्र पढ़कर उन्हें बड़ा रंज हुआ; पर ऊपर से उन्होंने कहा—"हुजूर, मुझे विश्वास नहीं होता, कि यह पत्र प्रताप का लिखा हुआ है। मैं खूब जानता हूँ; कि वे आपकी आधीनता मंजूर न करेंगे। यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं एक पत्र लिखकर उनसे सब बातें पूछूँ।" अकबर ने उन्हें पत्र लिखने की आज्ञा देदी।

पृथ्वीराज जी अच्छे कवि थे। उन्होंने मारवाड़ी भाषा की कविता में प्रताप को एक लम्बा पत्र लिखा। पत्र में पहले तो उन्होंने प्रताप की प्रतिज्ञा की प्रशंसा की, फिर उस प्रतिज्ञा को तोड़ने पर दुःख प्रकट किया और अन्त में प्रार्थना की कि वे

अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहें। पृथ्वीराज के पत्र का कुछ भाग इस तरह है—

"निर्भय राना याहि सकल हिन्दुन की आशा।
सब गौरव सन्मान हमारो तुम्हरे पासा॥
भूले क्षत्रिय निज गौरव प्राचीन समय को।
गई जाति यह राजपूत अब हाय! नरक को॥
क्षत्रिय-नारी दियो खोय निज कुल गौरव को।
अकबर गाहक एक हाय! सब राजपूत को॥
लीनों सबहिं बिसाय, बच्यो एक वीर प्रतापा।
उदय-पुत्र को मोल नहीं अकबर के पासा॥

❀ ❀ ❀

सबै रतन अनमोल हाथ अकबरहिं बिकाये।
पै मेवाड़ी वीर नहीं बिपनी❀ में आये॥
राना ने सम्पत्ति, राज्य, धन सुख को छोड़ा।
पै अमूल्य वह रत्न नही राना ने छोड़ा॥
केते जन अपमान आननो, आँखन देखत।
पै हमीर को वंश नहीं विपनी में लेखत॥
पूछत है संसार कौन बल राना पायो?
वह बल केवल तासु खड्ग के द्वारा आयो॥
ताहि खड्ग सो राना निज सम्मान बचायो।
परतिज्ञा निज पाल महद् उत्साह दिखायो॥
कोऊ जन नहिं अमर एक दिन मरनो सब को।
सब राखें यह ध्यान चिता में जरनो सब को॥
जब ठगि जैहैं राजपूतगन सकल हाट में।
तब गौरव सन्मान सौंपिहैं पुत्त हाथ में॥

❀ बाजार । प्रताप

तब वरवीर प्रताप बीज क्षत्रिय को बोवै।
जासों इक दिन जाति हमारी जग नहिं खोवै॥
वीर श्रेष्ठ परताप, हमारो मान रखै हैं।
तासो क्षत्रिय मात्र आपकी ओर विलोकै॥'

यह पत्र पढ़ते ही, महाराणा की आँखें खुल गई। मानों उनमें एकबारगी दस हजार राजपूतों का बल आ गया, वे अपनी गलती पर बार-बार पछताने लगे। उन्होंने उसी समय प्रतिज्ञा की, कि अब चाहे जितने कष्ट क्यों न सहने पड़ें, पर अकबर की अधीनता स्वीकार न करूँगा। वही काम करूँगा, जिससे देश और जाति का माथा ऊँचा होगा।

(१४)

भामाशाह का देश प्रेम और त्याग

महाराणा ने फिर से लड़ाई छेड़ दी। कितनी ही मुगल सेना मर गई। पर इससे अकबर का क्या बिगड़ता था। वे हर बार दूनी-तिगुनी सेना भेजकर आदमियों की कमी पूरी कर देते थे। और इधर प्रताप की जो हानि होती थी, उसकी घटी पूरी होने की कोई आशा न थी। धीरे-धीरे महाराणा बिलकुल परेशान हो गये। अब उनके पास न धन था, न आदमी थे, न हथियार थे, न कपड़े थे, इतने पर ऊपर से भर पेट भोजन मिलने के लाले अलग पड़ रहे थे। अब महाराणा प्रताप अकबर जैसे बली बादशाह से कितने दिन लड़ सकेंगे! लगातार पचीस बरस वे अपने ही भरोसे अकबर से भिड़े रहे। इतने भारी समय में मेवाड़ की पूरी बरबादी हो गई। हजारों साथी सदा के लिए मैदान में सो गये। खजाने में पाई भी न बची। प्रताप अपनी प्रतिज्ञा पर अड़े रहे, पर उनकी इच्छा

पूरी न हुई। मेवाड़ की इञ्च भर भूमि भी वे शत्रुओं के पंजे से न निकाल सके। उनके चारों ओर निराशा का अन्धकार छा गया। तब उन्होंने यह इरादा किया, कि अरावली पर्वत पारकर सिन्धु प्रदेश में नये राज की जड़ जमाऊँ।

महाराणा का हुक्म पाते ही यात्रा की तैयारी होने लगी! जिन सरदारों ने सुख-दुःख और सम्पत्ति-विपत्ति में महाराणा का साथ दिया था, वे भी उनके साथ चलने को तैयार हुए। महाराणा उनकी बात न टाल सके। उन थोड़े से सरदारों और स्त्री-पुत्र को साथ ले महाराणा ने यात्रा की। वे अरावली पर्वत पर जा चढ़े और पीछे घूम कर चित्तौर की ओर देखने लगे। इस समय महाराणा का मन महाराणा ही जानते थे। उनकी आँखों से आँसुओं की धार बहने लगी! वे कहने लगे—"हाय! मैं प्राणों के समान प्यारे मेवाड़ देश को शत्रु के चंगुल से न बचा सका। इसी देश की धूल में खेलते-खेलते मेरे बचपन के दिन बीते थे। इसी देश के अन्न जल ने मुझे जवान बनाया था, मुझे वीरता दी थी, हाय! आज यही मेरा प्यारा देश शत्रु की मुट्ठी में बन्द है! इसी देश के लिए मैंने अपने सुखों पर लात मार दिया, जङ्गल पहाड़ों की धूल छानता फिरा, पानी के समान खून बहाया, फिर भी अपने देश को अपना न कर सका!" यह कहते-कहते वे बार-बार अपनी जन्मभूमि को प्रणाम करने लगे। क्योंकि जन्मभूमि से उनकी यह अन्तिम विदा थी। महाराणा की यह दशा देख सब सरदारों को भी बड़ा रंज हुआ। वे बार-बार महाराणा को समझाने लगे।

परन्तु आदमी की सोची हुई सभी बातें पूरी नहीं होतीं। वह सोचता कुछ और है, परन्तु परमेश्वर कुछ और ही करता है। प्रताप का परमेश्वर पर बड़ा भरोसा था, उसी के भरोसे उन्होंने इतने कष्ट उठाये थे। आज जब वे सब ओर से निराश

हो बैठे, तब परमेश्वर ने उनकी सुध ली। सब लोग चलने को ही थे, कि बूढ़े मंत्री भामाशाह जी आते हुए देख पड़े। भामाशाह चित्तौर के पुराने मंत्री थे, वे जाति के जैनी थे। उनके पुरखाओं ने शुरू से ही मेवाड़-नरेशों की सेवा की थी, इसलिए महाराणा और राजवंश से उनका बड़ा प्रेम था।

भामाशाहजी की आँखें आँसुओं से तर थीं। उन्होंने आते ही महाराणा से हाथ जोड़कर कहा—"प्रभो! आप कहाँ जा रहे हैं? आपकी यह दशा क्यों हो रही है?" सब हाल सुनकर उन्होंने प्रताप से कहा—"प्रभो! आप इतने दुखित न हों! मेरे रहते आपको देश छोड़ने की जरूरत नहीं। आप लौट चलिए। मेरे पास धन की कमी नहीं। मेरे पुरखाओं ने आपके वंश की सेवा कर बहुत धन कमाया है। वह धन कब काम आयेगा? आप उससे मेवाड़ की रक्षा का उपाय कीजिए। मेरा देश बच जायगा, तो मुझे धन की कमी न रहेगी।"

डूबते को तिनके का सहारा मिला! भामाशाह की बातें सुनते ही महाराणा का मुरझाया हुआ चेहरा खिल उठा! भामाशाह का देश प्रेम और त्याग देख सभी सरदारों को बड़ा अचरज हुआ। उनके सूखे हुए चेहरों पर आनन्द नाचने लगा। दूसरे ही क्षण अरावली पर्वत 'मेवाड़ की जय! भामाशाह की जय' की गगनभेदी आवाज से गूंज उठा। उसी दिन से भामाशाह जी मेवाड़ के 'उद्धारकर्ता' कहलाने लगे।

अभी अभी जो लश्कर मेवाड़ को सदा के लिए प्रणाम कर सिंध देश की ओर जा रहा था, देखते ही देखते वह मेवाड़ की ओर लौट पड़ा। भामाशाह ने अपना सारा खजाना महाराणा प्रताप को सौंप दिया। उसमें इतना धन था, कि बारह बरस तक पच्चीस हजार सेना का खर्च भली भाँति चल सकता था। उस धन को पाकर महाराणा में मानों नयी जान आ गई। उनका साहस

पहले से सौगुना बढ़ गया। उनकी नसों में फिर से गरम खून बहने लगा। वे चौगुने उत्साह से युद्ध की तैयारियाँ करने लगे।

महाराणा की खबर पाते ही झुण्ड के झुण्ड राजपूत उनके झण्डे के नीचे जमा होने लगे। छिपे-छिपे युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं, मुगलों को कुछ पता न चला। वे यही सोचते रहे कि महाराणा देश छोड़ सिंध की ओर भाग गए हैं, इसलिए वे रात-दिन आनन्द मनाते रहते थे। इधर महाराणा ने कील काँटे से दुरुस्त हो बिगुल बजा दिया। मुगलों के अचरज का ठिकाना न रहा। वे भी तैयार होने लगे और देखते ही देखते दोनों ओर से युद्ध छिड़ गया।

(२)

राणाप्रताप की मृत्यु

मंत्री महाशय भामाशाह जी की सहायता से मेवाड़ के दिन फिर लौटे। महाराणा प्रताप ने पच्चीस बरस तक जो भारी भारी कष्ट सहे, वे व्यर्थ न गए, उनकी प्रतीज्ञा भी पूरी हुई और इच्छा भी बहुत कुछ पूरी हो गई। धीरे-धीरे उन्होंने फिर सारे मेवाड़ प्रदेश पर अधिकार कर लिया। कसर केवल इतनी ही रह गई कि, मेवाड़ की राजधानी चित्तौर पर उनका अधिकार न हो सका। उन्होंने हाथ-पैर तो बहुत चलाए, पर अकबर के ज़बरदस्त चंगुल से वे चित्तौर न छीन सके। तब उन्होंने प्रतिज्ञा की, कि जब तक चित्तौर पर अधिकार न कर लूँगा, तब तक अपने बाल न कटाऊँगा, नरम-नरम बिछौनों पर न सोऊँगा, न राजमहलों में रहूँगा और न सोने-चाँदी के बर्तनों में ही भोजन करूँगा। उदयपुर में राजधानी बनाई गई, पर महाराणा नगर के बाहर घास-फूस की झोपड़ियों में ही

रहते थे, वहीं उनका दरबार लगता था। वे पत्तलों में भोजन करते और घास फूस की शैय्या पर सोते थे।

चित्तौर की चिन्ता करते करते ही महाराणा का बुढ़ापा आ गया। पच्चीस बरस कष्ट सहते-सहते उनका शरीर कमजोर हो गया था, ऊपर से उन्हें चित्तौर की चिन्ता ने और भी धर दबाया। मारे चिन्ता के महाराणा तिल-तिलकर घुलने लगे। शरीर ने जवाब दे दिया। वे बीमार हो बिस्तरे पर पड़ रहे और धीरे-धीरे मौत के पास जा पहुँचे।

आज महाराणा की दशा बहुत खराब है। वे अब घड़ी दो घड़ी के पाहुने हैं। यह सुन कर सब सरदार-सामन्त उनका दर्शन करने के लिये उनकी झोपड़ी में दौड़े आए। महाराणा चटाई पर पड़े हुए थे। सब सरदार उनके चारों ओर जमा थे। सभी के चेहरों पर उदासी छाई हुई थी, सभी की आँखें डब-डबाई हुई थीं। किसी के मुँह से बात तक न निकलती थी। सभी यही सोच रहे थे—"हाय! महाराणा प्रताप जैसा वीर दयालु और हमें चाहने वाला राजा अब कहाँ मिलेगा।"

इस समय महाराणा को बड़ा कष्ट हो रहा था। वे पड़े-पड़े छटपटा रहे थे, पर प्राण शरीर न छोड़ते थे। यह देख चंदावत सरदार की आँखों से आँसू बहने लगे। उन्होंने रुँधे गले से महाराणा से पूछा—"प्रभो! आपको इस अन्तिम समय में किस बात का कष्ट है, जो आप सुख से प्राण नहीं त्याग सकते?"

इतना सुनना था कि महाराणा होश में आ गये और कराहते हुए बोले—"सरदार जी! आप मेरे कष्ट की बात पूछते हैं। सचमुच इस समय मुझे बड़ा कष्ट है। मेरी प्रतिज्ञा पूरी न हो सकी; मैं चित्तौर का उद्धार न कर सका और यह भी आशा नहीं कि मेरा पुत्र अमरसिंह यह काम कर सकेगा। राज्य-रक्षा के लिए जो-जो कष्ट सहने पड़ते हैं, अमर उन्हें

नहीं सह सकता! वह सुख के लिए मरने वाला है। जिस दिन की बात है, यह झोपड़ी अमर के सिर में लग गई, उसकी पगड़ी नीचे जा गिरी, बस, वह मुझसे बिगड़ कर बोला—यहाँ बड़े-बड़े राजमहल बनने चाहिए। ऐसे आदमी से क्या आशा की जाय? वह न तो हमारे पूर्वजों की कीर्ति की ही रक्षा कर सकेगा और न मेवाड़ की ही।"

यह कहते-कहते महाराणा का गला रुँध गया। थोड़ी देर बाद वे ठण्डी साँस लेकर फिर बोले—"मैंने मेवाड़ की रक्षा के लिये अपने सारे सुखों पर पानी फेर दिया, जंगलों और पहाड़ों की धूल छानते छानते जीवन के पच्चीस बरस बिता दिये। मेरे बाद ही अमर ये सभी बातें भूल जायगा! अमर स्वाधीनता को त्याग शत्रुओं की सेवा करेगा, और हाय! तुम लोग अपने राजा की हाँ में हाँ मिलाओगे। सरदार जी, मुझे धीरज और आशा बँधाने वाली वाणी आपके पास ही है! यदि आप लोग मेरे सामने एक बात की प्रतिज्ञा करें तो मैं सुख से प्राण त्याग सकूँगा।

चन्दावत जी बोले—'प्रभो! आप आज्ञा दीजिए! आपकी आज्ञा पाते ही हम लोग हलाहल विष भी पी सकते हैं, धधकती हुई अग्नि में कूद सकते हैं।"

महाराणा का सूखा हुआ मुखड़ा खिल उठा। उन्होंने कहा—"आप लोग मेरे सामने प्रतिज्ञा कीजिए कि हम लोग सदा मेवाड़ की रक्षा करेंगे, उस पर कभी शत्रुओं का अधिकार न होने देंगे; तो मैं सुख से सदा के लिए अपनी आँखें मूँद लूँगा।"

यह सुनते ही सब सरदार एक स्वर से बोले—"हम लोग परमात्मा की शपथ खाकर कहते हैं कि हम सदा मेवाड़ के महाराणा के वंश की कीर्ति बढ़ावेंगे! जब तक हमारे शरीर में एक बूँद भी लहू रहेगा, तब तक हम मेवाड़ की रक्षा करेंगे

और एक इंच भूमि पर शत्रु का अधिकार न होने देंगे। जब तक चित्तौर पर मेवाड़ का अधिकार न हो जायगा, तब तक यहाँ कोई महल न बनने देंगे।"

यह सुनकर महाराणा को बड़ा आनन्द हुआ। भगवान का नाम लेते-लेते उन्होंने आनन्द से स्वर्ग की यात्रा की। उनकी मृत्यु होते ही मेवाड़ में हाहाकार मच गया। क्या हिन्दू क्या मुसलमान और क्या शत्रु क्या मित्र, जिसने महाराणा की मृत्यु का समाचार सुना, उसी ने शोक से आँसू बहाए।

सबसे बड़े दुःख की बात तो यह है, कि महाराणा प्रताप के बाद कोई भी राणा आज तक चित्तौर का उद्धार न कर सका। आज तक महाराणा प्रताप की वह इच्छा पूरी न हो सकी। जिन प्रताप की नस-नस में देश-प्रेम का खून हिलोरें ले रहा था, और जो प्रताप मरते-मरते भी चित्तौर को न भुला सके थे, उन प्रताप का प्यारा चित्तौर आज सुनसान पड़ा हुआ है।

चित्तौर के महाराणा अपने पुरखों की प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए आज भी सोने-चाँदी के बर्तनों के नीचे पत्तल रखकर भोजन करते हैं। पलंग पर सोते हैं, पर उसके नीचे थोड़ा-सा घास फूस जरूर रख लेते हैं।

---

(१६)

अकबर और बीरबल की मित्रता

बादशाह अकबर बड़े ही गुणवान थे। वे गुणी लोगों का बड़ा आदर करते थे; वे चाहे किसी जाति के क्यों न हों—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई या जैन। उनकी सभा में बड़े-बड़े गुणी और विद्वान इकट्ठे हो गये थे। उनमें बीरबल भी एक

थे। वे जाति के ब्राह्मण थे। उनका असली नाम महेशदास जी था। कहते हैं, कि बीरबल गरीब माँ-बाप के बेटे थे। अकबर उनके गुणों पर रीझ गये और उन्हें अपने दरबार में रख लिया, गरीब से राजा के पद पर पहुँचा दिया—यहाँ तक कि उन्हें अपना मित्र भी बना लिया।

बीरबल में और भी गुण तो थे ही, पर उनमें सबसे बड़ा गुण था वाक्-चातुरी। उनकी बातें बड़ी मीठी, लुभानेवाली और चतुराई से भरी हुई होती थीं। बातों ही बातों में रोते हुए को हँसा देते। इसी गुण की बदौलत वे बादशाह के सबसे प्यारे और विश्वास-पात्र बन बैठे। बादशाह को और सरदारों की ज़रूरत तो जब-तब ही पड़ती थी पर उनको ज़रूरत रात दिन रहती थी। लड़ाई की बात चली तो बीरबल बातों ही बातों में तोपें-बन्दूकें चलाते हुए बड़े-बड़े राज्य जीत लेते, और बैठे रहते दिल्ली में ही। दरबार में विद्वानों की सभा जुड़ी है, बीरबल उनका खिल्लो उड़ाते हुए बादशाह को हँसा रहे हैं। रात को महल में नाच-रङ्ग हो रहा है, और सरदार तो दरवाजे पर भी नहीं झाँक सकते, पर बीरबल वहाँ भी विराजे हैं, और बादशाह का मन बहला रहे हैं। इस प्रकार बीरबल आठ पहर—चौंसठ घड़ी बादशाह के साथ रहते थे। वे बादशाह के खिलौने थे। उनमें आपस में खूब गपशप और हँसी-दिल्लगी हुआ करती थी। जहाँ और बड़े-बड़े सरदार बादशाह के सामने नजर उठा कर भी न देख सकते, वहाँ बीरबल उनसे मुँह लगा कर बातें करते थे। अकबर और बीरबल की कितनी ही कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। ऐसा कोई गाँव नहीं, जहाँ अकबर बीरबल का नाम प्रसिद्ध न हो, और ऐसा कोई आदमी न मिलेगा, जो अकबर-बीरबल के दो एक चुटकुले न जानता हो।

एक दिन की बात सुनिए। बादशाह मैदान में पोलो का खेल, खेल रहे थे। बीरबल भी खेल में शामिल थे। एकाएक बीरबल के घोड़े का पैर रपटा, और बीरबल धम से धरती पर जा गिरे। उनके सिर में बड़ी चोट लगी, वे बेहोश हो गये। यह देखते ही बादशाह घोड़े से नीचे उतर पड़े। और सरदारों तथा नौकरों-चाकरों के रहते हुए भी वे खुद बीरबल के पास पहुँचे। उन्हें दो-चार बार पुकारा; पर जब वे न बोले तब बादशाह उनके सिर पर हाथ फेरने और उन्हें होश में लाने की कोशिश करने लगे। थोड़ी देर में बीरबल को होश आ गया। तब बादशाह ने उन्हें बड़ी हिफाजत से उनके घर भेजवा दिया।

एक दिन बादशाह हाथियों की लड़ाई देख रहे थे। लम्बे चौड़े मैदान में कई हाथी भिड़ रहे थे। उन हाथियों में दिलचाचर नाम का एक हाथी बड़ा मस्त और बदमाश था। लड़ते लड़ते वह बिगड़ उठा। उसने दो सिपाहियों का पीछा किया। सिपाही तो प्राण लेकर भाग गए; पर हाथी पीछा करते-करते वहाँ जा पहुँचा, जहाँ बीरबल बैठे थे। लोगों में भगदड़ पड़ गई। बीरबल उस हाथी के सामने पड़ गये, यदि बादशाह हिम्मत से काम न लेते तो बीरबल का बचना मुश्किल था। ज्योंहीं बादशाह ने अपने मित्र के प्राण संकट में देखे, त्योंही वे घोड़ा उड़ाकर हाथी और बीरबल के बीच में जा पहुँचे। उन्होंने हाथी को इतने जोर से डाँटा, कि वह जहाँ का तहाँ खड़ा रह गया। बीरबल के प्राण बच गये।

भाग्य की बात देखिये, कहाँ तो बादशाह बीरबल को इतना चाहते थे, और कहाँ उन्होंने खुद ही उनको मरने के लिये भेज दिया। बात यह हुई कि एक बार काबुल के पठानों ने बड़ा ऊधम मचाया। उन्होंने वहाँ की बादशाही सेना को मार

भगाया। बादशाह ने यह खबर सुनी। उन्होंने दरबार में चर्चा की, कि काबुलियों को ठीक करने के लिये कौन सरदार भेजा जाय? शेख अबुलफजल बोले—मैं जाऊँगा। यह सुन बीरबल ने कहा—"वाह! क्या कहना! मेरे रहते आप न जा सकेंगे।" दोनों सरदारों को झगड़ते देख बादशाह ने उनके नाम गोली डाली। गोली बीरबर के नाम पर निकली और वे दल बल सहित काबुल की ओर रवाना हुए।

बादशाह बीरबल को बहुत चाहते थे, इसलिए उन्होंने उनकी सहायता के लिए हकीम अबुलफतह और जैन खाँ कोका को भी भेजा। ये सरदार लड़ाई के हुनर में बड़े चतुर थे। अपनी अपनी सेनाएँ ले ये लोग बीरबल के पीछे-पीछे चले। काबुल के पहाड़ी प्रदेश में पहुँचते ही काबुली लोगों से लड़ाई छिड़ गई। काबुलियों की हार होने लगी। बीरबल का हौसला बहुत बढ़ गया। एक दिन बादशाही फौज एक तङ्ग घाटी में पड़ गई। पास ही काबुली थे। बीरबल ने उन पर हमला करने का इरादा किया। चतुर हकीम और कोका ने उन्हें बहुत समझाया, कि यह स्थान लड़ाई के योग्य नहीं है, कहीं ऐसा न हो कि उलटे लेने के देने पड़ जाँय। घाटी से निकल चलिए, तब काबुलियों पर हमला कीजिए। परन्तु बीरबल ने उनकी एक न सुनी और काबुलियों पर हमला कर दिया। फिर क्या था, काबुलियों ने इन लोगों को चारों तरफ से घेर लिया। बीरबल के दल ने बड़ी वीरता से युद्ध किया। पर फल कुछ न निकला। बहुत सी सेना के साथ बीरबल मारे गए। हकीम और कोका ने मुश्किल से भाग कर प्राण बचाए।

दिल्ली में भी यह खबर पहुँची। किसी की हिम्मत, बादशाह को यह खबर सुनाने की न होती थी। तब शेख अबुलफजल ने कवि केशवदास जी से कहा—"महाराज, आप ही चतुराई से

बादशाह को यह समाचार सुनाइए! केशवजी दरबार में गये। उन्होंने बादशाह के सामने यह दोहा पढ़ा—

"भूपति सब याचक भए, रह्यो न कोऊ लेन।
इन्द्रहु को इच्छा भई, गयो बीरबल देन॥"

बादशाह हिन्दी-भाषा के कवि थे। दोहे का मतलब फौरन समझ गये। उन्हें बड़ा रंज हुआ। और हकीम और कोका पर भी बड़ा क्रोध आया। हुक्म दिया कि हकीम और कोका मुझे मुँह न दिखलावें। बादशाह बीरबल के शोक से व्याकुल होकर कहने लगे—

"दीन जान सब दीन, एक दुरायो दुसह दुःख।
सो अब हमको दीन, कछु नहीं राख्यो बीरबर॥

उन्होंने हुक्म दिया कि बीरबल की लाश का पता लगाया जावे, हम उसे ही देख कर अपनी आँखें ठंढी करेंगे। तमाम घाटी छान डाली गई, लड़ाई के मैदान का कोना-कोना ढूँढ़ डाला गया, पर बीरबल की लाश का पता न चला। इससे बादशाह को और भी रंज हुआ। कभी वे कहने लगते थे—हाय! कैसे! रंज की बात है कि मैं उसकी अन्तिम क्रिया भी न कर पाया! फिर कभी आप ही मन को समझाते थे, क्या हुआ जो मैं उसकी अंतिम क्रिया न कर सका। वह बड़ा ही पवित्र, शुद्ध और प्रेमी आत्मा था। सूरज की किरणों ने ही प्रेम से उसकी लाश की अन्तिम क्रिया कर डाली होगी।

कई दिन तक महलों में उदासी छाई रही। बादशाह ने दो दिन तक भोजन नहीं किया। जब उनकी बेगमों ने उन्हें बहुत समझाया, तब कहीं उन्होंने भोजन किया। बादशाह ने अपने हाथों बीरबल की मृत्यु का समाचार लिख कर सरदारों के पास भेजा था। उन दिनों नवाब अब्दुर्रहीम खानखाना गुजरात के सूबेदार थे। बादशाह ने उन्हें छै सफों का एक पत्र लिखा था,

उसके पढ़ने से मालूम होता है कि बादशाह को बीरबल की मृत्यु से कितना दुःख हुआ था।

मुल्ला बदायूनी ने अपनी किताब में लिखा है—' बादशाह ने किसी अमीर उमरा के मरने पर इतना रंज नहीं मनाया था।"

(१७)

अनोखा बदला

मध्यप्रदेश का पुराना नाम गोंड़वाना है, क्योंकि वहाँ पहले-पहल गोंड़ लोगों की बस्ती थी और उन्हीं का राज्य भी था। गोंड़ लोगों में भी बड़े-बड़े वीर, साहसी और चतुर आदमी हो गये हैं।

बहुत दिनों की बात है, गोंड़ों की फौज में फ़कीरसिंह और कुबेरमल नाम के दो सिपाही थे। दोनों ही बड़े बहादुर और हिम्मतवर थे। उनमें आपस में खूब प्रेम था। बहुधा वे घण्टों बैठ कर गपशप किया करते थे।

एक दिन की बात है, दोनों मित्र बैठे बैठे गपशप कर रहे थे। बातों ही बातों में कुछ कहा-सुनी हो पड़ी। फ़कीरसिंह बहुत बिगड़ा, यहाँ तक कि वह कुबेरमल को गालियाँ देने लगा। बेचारे कुबेरमल की बड़ी बेइज्जती हुई। पर उसे चुपचाप फ़कीरसिंह की गालियाँ सह लेनी पड़ीं। बात यह थी कि फकीरसिंह कुबेरमल का अफ़सर था। इसीलिए कुबेरमल ने गालियाँ सह लीं। न सहता तो क्या करता? यदि कुछ गड़बड़ करता तो उसे ही आफत में पड़ना पड़ता।

उस दिन कुबेरमल ने फकीरसिंह की गालियाँ सह तो लीं, पर उसके दिल में बात लग गई। वह अपनी बेइज्जती की बात भूल न सका। दिन-दिन दोनों का मन-मुटाव बढ़ता गया। फ़कीरसिंह था अफ़सर, बातों-बात में ऐंठ पड़ता और कुबेरमल को झिड़क देता था। एक दिन फिर फकीरसिंह इतना बिगड़ा

की उसने क्रोध में आकर कुबेर को लात मार दी। अब तो कुबेर-मल का क्रोध भी भड़क उठा, उसने कड़क कर फकीरसिंह को जवाब दिया—"रे फकीरा! अभी तेरे दिन अच्छे हैं तू बड़े दर्जे पर है। जितना जी चाहे, मेरी बेइज्जती कर ले। खूब खयाल रख, यदि मैंने तुझसे बदला न लिया तो, मेरा नाम कुबेरमल नहीं। चाहे इसमें मेरे प्राण भी चले जायँ।" पर फकीरसिंह ने कुछ जवाब न दिया। वह मुस्कुराता हुआ वहाँ से चला गया।

इसके थोड़े दिन बाद ही गोंड़ों की फौज लड़ाई पर भेजी गई। फकीरसिंह और कुबेरमल भी गए। गोंड़ों की फौज ने बड़े जोर शोर से किले पर हमला किया। किले वाले भी लड़ने के लिये कमर बाँधे तैयार थे। धड़ाधड़ मारकाट होने लगी। दोनों दल वाले तन बदन की सुध भूल हथियार चलाने लगे। बड़ी लड़ाई हुई; पर गोंड़ों का भाग्य उलटा था। जीत किले वालों की हुई।

गोंड़ों की फौजें हारकर पीछे हटने लगीं। इसी भागाभागी में फकीरसिंह को बड़ी चोट लगी। छल-छल कर के खून बहने लगा। बेचारा चोट सम्भाल न सका। वहीं बैठ गया। सब लोग यहाँ वहाँ भाग रहे थे, वहाँ फकीरसिंह को कौन पूछता था। जब फकीरसिंह ने देखा कि कोई मेरी बात नहीं पूछता तो उसे भरोसा हो गया कि आज मुझे यहाँ इसी दशा में मरना पड़ेगा। कई लोगों से उसने गिड़गिड़ा कर विनती की, पर वहाँ कौन किसकी सुनता था, सभी अपने-अपने प्राण लेकर भाग रहे थे।

धीरे धीरे फकीरसिंह की सारी आशा जाती रही। इतने में वहाँ से कुबेरमल निकला। उसे देखते ही फकीरसिंह की आशा बँधी। उसने गिड़गिड़ा कर उससे कहा—"क्यों मित्र कुबेरमल! क्या आज मैं यहाँ इसी दशा में मर जाऊँगा। हाय! अब तक कितने लोग मुझे लातें मार कर चले गये हैं।" कुबेरमल का हृदय पत्थर का नहीं था। फकीरसिंह की बात सुनते ही उसका

हृदय पिघल गया। वह पहले की सारी दुश्मनी भूल गया। उसने आँखों में आँसू भर कर फकीरसिंह को जवाब दिया—"नहीं मित्र, मेरे रहते तुम इस तरह न मरने पाओगे।"

इसके बाद कुबेरमल ने फकीरसिंह को अपनी पीठ पर लादा और अपनी छावनी की तरफ चला। वजन भारी था, बिचारे कुबेरमल को बड़ा कष्ट होने लगा, पर वह जैसे तैसे फकीरसिंह को लादे लिये जा रहा था। इसी समय उन पर एक शत्रु की नजर पड़ गई! उसने ताक कर उन पर गोली दाग दी। दोनों मित्रों के सिर पर मौत नाच रही थी, गोली कैसे बेकार जाती? वह कुबेरमल को लगी—और बुरी तरह लगी। बेचारा चीख मार, वहीं अर्रा कर गिर पड़ा। कुबेरमल नीचे था और फकीरसिंह ऊपर। यह देखते ही वहां बहुत से गोंड़ लोग दौड़े आए। पर, अब उनके आने से क्या होता था।

कुबेरमल को बुरी तरह चोट लगी। बेचारा थोड़ी देर तक तड़प कर वहीं ठंडा हो गया। फकीरसिंह के हृदय पर बड़ी चोट लगी। "हाय! बेचारे को अंत में मेरे पीछे प्राण भी त्यागने पड़े। हे भगवान्! अब ऐसा मित्र कहाँ पाऊँगा। यह कहकर वह डाढ़ें मार-मारकर रोने लगा। उसने कुबेरमल की लाश छाती से लिपटा ली और बालकों के समान उस पर प्यार करने लगा। उसके हृदय से भी खून की धार बह रही थी। आज दोनों का मनमुटाव दूर हो गया—दोनों की खून की धाराएँ एक हो गईं!

फकीरसिंह की यह दशा देख लोगों ने उसे कुबेरमल की लाश से अलग किया। वे उसे छावनी में ले गए। पर, वह 'कुबेरमल! कुबेरमल! कह कर रोता ही रहा। धीरे धीरे उसकी दशा खराब हो चली और शाम होते होते वह भी चल बसा। आज कुबेरमल ने सचमुच फकीरसिंह से बदला ले लिया। एक ही जगह पर दोनों की अन्तिम क्रिया की गई।

लोग फकीरसिंह और कुबेरमल की यह खटपट और यह प्रेम देखकर हैरान थे !

कहिए, आप इस बदले को कैसा समझते हैं ?

(१८)

हिम्मतसिंह की बहादुरी

हिम्मतसिंह धार का राजकुमार था। उनकी माँ मर चुकी थी। सौतेली माँ सूजाबाई उससे बहुत जलती थी। वह चाहती थी कि मेरा पुत्र बप्पालाल राजा के बाद सिंहासन पावे। राजा सूजाबाई के कहने में था, इसलिए सूजाबाई जब तब उससे हिम्मत की बुराई और बप्पालाल की बड़ाई किया करती थी। राजा धीरे-धीरे हिम्मत पर नाराज होता गया। उसने इरादा कर लिया कि छोटे पुत्र बप्पालाल को ही राजा बनाऊँगा। एक दिन उसने बड़े पुत्र हिम्मत को देश से निकल जाने की आज्ञा दे दी।

हिम्मतसिंह ने देश से जाने की तैयारी करली ! काले कपड़े पहिन, काले घोड़े पर सवार हुआ। इतने में वहाँ एक हजार राजपूत सवार और आ गये। उन सब ने राजकुमार का साथ देने की इच्छा प्रकट की। बात यह थी कि राजा ने हिम्मतसिंह पर बड़ा अत्याचार किया था। सिंहासन का असली अधिकारी हिम्मतसिंह ही था। तो भी राजा ने रानी के प्रेम में आकर हिम्मत को देश से चले जाने की आज्ञा दी। यह देख उन धर्मात्मा राजपूतों को बड़ा रंज हुआ। उन्होंने इरादा कर लिया कि हम अपने सच्चे राजा का साथ कभी न छोड़ेंगे।

सब लोग जन्मभूमि को प्रणाम कर वहाँ से चल खड़े। सभी चुपचाप चले जा रहे थे। उन्हें मातृभूमि से बिछुड़ने का बड़ा

रज हो रहा था। जब सब लोग बहुत दूर निकल गए, तब एक जगह थकावट मिटाने के लिए बैठ गए, और आपस में सलाह करने लगे कि अब क्या करना चाहिए ? एक मनचले ने कहा—"अपनी राय तो यह है, कि धार को ही लौट चलना चाहिए और जैसे बने, वैसे धार पर अधिकार जमाना चाहिए।" यह सुनते ही दूसरा मनचला बोल उठा—"आपने मेरे मन की कह दी। राज्य के अधिकारी हमारे कुमार जी ही हैं, राजा को उन्हें देश से निकालने का क्या अधिकार ? मेरी बात चले तो मैं तो एकदम धार पर धावा बोल दूँ और मारकाट मचा दूँ।"

तब हिम्मतसिंह ने उससे कहा—"कुछ भी हो, हैं तो वे अपने ही आदमी। अपने आदमियों का खून बहाना पाप है। यदि आप लोग लड़ना ही चाहते हैं, तो शत्रुओं से लड़िए। बार का पहाड़ी किला पास ही है, वहाँ की बहुत सी मुगल सेना गुजरात चली गई है; चलो, हम लोग उसी पर हमला कर अधिकार जमावें।'

यह सुन सब लोग बोले—"बहुत अच्छा ! हमें क्या, आप जहाँ जायेंगे, हम भी वहीं जायेंगे। हमें तो लड़ने और राज्य पाने से मतलब है।" बस, अब राजपूतों का वह दल बार की ओर चला और तीसरे दिन वहाँ जा पहुँचा।

उस समय बार के किले में बहुत थोड़ी सेना थी ! जो मुगल सिपाही वहाँ थे भी उनमें से आधे से अधिक शिकार खेलने चले गये थे। बस, हिम्मतसिंह की बन पड़ी। उसने बड़ी तेजी से किले पर हमला कर दिया। थोड़ी ही लड़ाई के बाद किले पर हिम्मतसिंह का अधिकार हो गया। किले में राजपूतों को ढेर का ढेर अनाज मिला, और बेहिसाब नये नये हथियार भी मिले। अब राजपूतों की खुशी का क्या कहना ! खूब जल्से मनाये गये।

राजपूत जानते थे कि बहुत जल्दी हमें शत्रुओं से लोहा लेना

पड़ेगा; इसलिए उन्होंने लड़ाई की खूब तैयारियाँ कर ली। इसके बाद उन्होंने आसपास गाँवों में लूट मार मचाना शुरू कर दिया बादशाह को भी खबर मिली। उन्होंने एक बड़ी सेना के साथ आसफ खाँ को किले पर अधिकार जमाने के लिये भेज दिया। आसफ ने आते ही किले के चारों ओर घेरा डाल दिया। वे बहुत दिन तक घेरा डाले रहे, पर सार कुछ न निकला। राजपूत किले में खुशी से भजन करते और चैन की बंसी बजाते थे।

तब आसफखाँ ने हाथियों से किले का फाटक तुड़वाने का विचार बाँधा। तब उन्होंने किले के फाटक तकसबात* बनवाना शुरू किया। कई दिन की कड़ाचूर मेहनत के बाद रास्ता बन गया! इससे मुग़ल सेना में खुशी से नाच गाना हो रहा था। उधर हिम्मतसिंह ने दूसरा ही विचार बाँधा। वह थोड़े से आदमियों के साथ बहुत-सा तेल ले, सुरङ्ग के रास्ते बाहर निकला और सबात पर तेल छिड़क बत्ता लगा दी। सबात धाँय धाँय करके जल उठी। मुगलों की सारी मेहनत मिट्टी में मिल गई। यह काम करके हिम्मतसिंह चुपचाप किले में चला गया।

फिर से आसफखाँ ने सबात तैयार कराई। अब की बार उस पर बड़ी सावधानी से पहरा रखा गया। हिम्मतसिंह बहुत कोशिश करने पर भी सबात न जला सका। अब फाटक तोड़ने के लिए तीन हाथी तैयार किए गए। फाटक में लम्बे-लम्बे नुकीले खीले ठोंके हुए थे, जो हाथियों के माथे पर चुभ जाते। इसलिए उनके माथे पर लोहे के मोटे मोटे तवे बाँधे गए। पहला हाथी सबात में होकर फाटक तोड़ने चला। उसके साथ कुछ सेना भी चली। जब वह दल सबात के द्वार पर पहुँचा, तब राजपूतों ने उसकी गरदन पर एक बड़ा सा पत्थर पटक दिया। बेचारा चिंघाड़ मारता और सबात के अगले भाग को तोड़ता

*छापेदार रास्ता! इसमें शत्रु की मार का डर बहुत कम रहता है।

हुआ भाग निकला। अब दूसरा हाथी भेजा गया। महावत ने उसे बहुत बढ़ाया, पर फाटक के खाले देख वह ऐसा चौंका कि लाख उपाय करने पर भी आगे न बढ़ा और भाग निकला।

अब रह गया तीसरा हाथी। वह बड़ा ही मस्त बली और निडर था। महावत ने उसे आगे बढ़ाया। यह तीरों और पत्थरों का परवाह न कर आगे बढ़ा! उसने बड़ी तेजी से फाटक पर टक्कर मार ही तो दी। फाटक चरमरा गया, खील चूर चूर हो गये। राजपूतों में हलचल मच गई। इस बार हिम्मतसिंह ने बड़ी ही बहादुरी दिखलाई। उसने मुँह में कटार दबाई और हाथ में लोहे की एक मेख ली। इसके बाद वह दन से हाथी पर से कूद पड़ा। पहले तो उसने फुरती से महावत का काम तमाम किया और तब चट से मेख हाथी के सिर में ठोंक दी। हाथी चिंघाड़ता हुआ भाग गया! उसके भागते ही हिम्मतसिंह कूद पड़ा। दल के दल मुगल उसकी ओर झपटे। यह देख राजपूतों ने ऊपर से रस्सी लटका दी। जब तक मुगल पास आवें-आवें तब तक उसने रस्सी पकड़ ली और राजपूतों ने सर से उसे ऊपर खींच लिया। पलक मारते इतना बड़ा काम हो गया। मुगल देखते ही रह गए।

इसके बाद आसफ खाँ ने और भी कई बार किले पर अधिकार करने के उपाय किए पर हिम्मतसिंह के सामने उनकी एक न चली। तब वे फिर किले के चारों ओर घेरा डाल बैठ रहे। धीरे-धीरे किले का सब अन्न चुक गया। भूखों मरने की नौबत आ पहुँची। राजपूतों ने चुपचाप निकल भागने की ठहराई। एक दिन अँधेरी रात में सब लोग सुरङ्ग की राह से किले से बाहर निकले। चुपचाप भागना ही चाहते थे कि मुगलों को आहट मिल गई। वे खार खाए तो बैठे ही थे, दौड़े और उन्होंने बात की बात में राजपूतों को घेर लिया। राजपूतों ने

भी तलवार खींच लीं। वे मुग़ल सेना को मारते काटते, जहाँ जिसे जगह मिली, भाग गए।

रास्ते में हिम्मतसिंह को उसकी स्त्री का भेजा हुआ पत्र मिला उसमें लिखा था—"आप के पिता सूजाबाई और बप्पालाल के साथ 'ग्रीष्मभवन' में जा रहे हैं। उनके प्राण संकट में हैं, जितनी जल्दी बन सके, 'ग्रीष्मभवन' में पहुँचकर उनके प्राण बचाओ।"

बेचारा हिम्मतसिंह बड़ी दुविधा में पड़ा; क्योंकि उसे देश निकाले की सजा मिल चुकी थी। यदि वह देश में लौटता है और पकड़ लिया गया, तो प्राण संकट में पड़ते हैं, और उधर पिता के प्राण संकट में हैं ही। अब वह अपने प्राण बचावे या पिता के? अन्त में उसने अपने प्राण की चिन्ता न कर पिता के प्राण बचाने का ही इरादा किया। वह भेष बदल कर लुकता छिपता हुआ 'ग्रीष्मभवन' की ओर चला। सब की नजर बचाता हुआ बड़ी चतुराई से महल में जा छिपा। उस समय उसका पिता और सूजाबाई तथा बप्पालाल महल में आ चुके थे।

राजा, बप्पालाल के साथ भोजन करने बैठा। सूजाबाई उन पर पंखा झलने लगी। थोड़ी देर बाद वह एक कमरे में गई और शरबत बनाने लगी। उस पापिन ने पति की हत्या करने के लिए शरबत में जहर की पुड़िया डाल दी। हिम्मतसिंह छिपा छिपा सब देखता रहा।

ज्यों ही सूजाबाई शरबत लेकर राजा के पास पहुँची और राजा ने शरबत का ग्लास उठाया, त्योंही हिम्मतसिंह झपट कर उसके सामने जा पहुँचा। उसे देखते ही राजा घबड़ा उठा और गरज कर बोला—"तुझे देश-निकाला दिया जा चुका, फिर तू यहाँ क्यों आया। अरे विश्वासघाती! ठहर अभी तुझे इसकी भरपूर सजा दी जायगी।"

हिम्मतसिंह ने राजा को नम्रतापूर्वक जवाब दिया'—पिताजी!

विश्वासघाती कौन है, अभी इसका फैसला हुआ जाता है। मेरी इन माताजी से कहिए कि ये यह शरबत बप्पालाल को पिला दें।"

यह सुनते ही सूजाबाई का मुखड़ा पीला पड़ गया। वह बेहोश होकर गिर पड़ी। तब राजा ने उस शरबत की जाँच की। उसे सब भेद मालूम हो गया। बेचारे की जान बच गई। उसे बहुत खुशी हुई। उसने मारे प्रेम के हिम्मतसिंह को गले लगा लिया और उसने कहा-"बेटा! मुझे आज इन पापियों का भेद मालूम हुआ। मैंने बड़ी गलती की, जो तुम्हें देश-निकाले की सजा दी। अब तुम्हीं मेरे बाद इस देश के राजा बनोगे।"

(१९)

महाराणा अमरसिंह

महाराणा प्रताप की मृत्यु के बाद उनके जेठे राजकुमार अमरसिंह मेवाड़ के महाराणा हुए। उन्होंने गद्दी पर बैठते ही राज्य के बहुत से नियमों में अच्छे-अच्छे सुधार किए। पर अन्त में वही बात हुई, जिसका महाराणा प्रताप को बड़ा खटका था। अमरसिंह ने अपने पिता की आज्ञा योंही उड़ा दी। उन्होंने प्रताप के समय की झोपड़ियाँ उखड़वा कर फेंक दी, और वहाँ अमरमहल नाम का एक भारी महल बनवाया। अपने खुशामदी मित्रों के साथ सानन्द से उसी में रहने लगे। प्रताप के समय के सरदारों ने अमर को इस काम से बहुत रोका पर उन्होंने किसी की एक न सुनी। बेचारे सरदार मन मार कर रह गये।

महाराणा प्रताप के मरने के आठ बरस बाद अकबर भी इस दुनिया से चल बसे। उनके बाद उनके बड़े शाहजादे सलीम जहाँगीर के नाम से भारत के बादशाह हुए। राज्य पाने के चार बरस बाद उनका ध्यान मेवाड़ की ओर गया। उन्होंने मेवाड़ जीतने के लिए एक बड़ी फौज भेज दी।

अमरसिंह ने भी यह हाल सुना। पर वे ज्यों के त्यों बैठे रहे। उन्हें कुछ भी करते-धरते न देख उन सरदारों को बड़ा दुःख हुआ, जिन्होंने महाराणा प्रताप के सामने मेवाड़ की रक्षा करने की प्रतिज्ञा की थी। वे सब 'अमरमहल' में इकट्ठे हुए। उन्होंने अमरसिंह को मुग़लों की चढ़ाई का सब हाल सुनाया। अमरसिंह ने इस बार भी कुछ न कहा। वे सरदारों की ओर टुकुर-टुकुर देखते हुए चुपचाप बैठे रहे।

राणा को कुछ भी 'हाँ हूँ' करते न देख सरदार मारे क्रोध के आग बबूला हो उठे। चन्दावत सरदार बिगड़ कर बोले—"महाराज! क्या आप इसी तरह अपनी प्रतिज्ञा और पूज्य पिता की आज्ञा का पालन करेंगे? शत्रु धावे पर धावा मारता हुआ मेवाड़ की ओर आ रहा है। और आप कायर के समान चुपचाप बैठे हुए हैं। वह आपके सामने मेवाड़ का नाश करेगा, आपकी प्रजा रोती चिल्लाती फिरेगी और आप इन आँखों से टुकुर-टुकुर देखा करेंगे। यदि आप में पूर्वजों के यश की रक्षा करने का साहस नहीं था, तो इस पवित्र वंश में जन्म ही क्यों लिया था? यदि आपकी भुजाओं में मेवाड़ की रक्षा करने के लिये बल नहीं था, तो आपने मेवाड़ के इस पवित्र सिंहासन को क्यों अपवित्र किया?"

पर वाह रे अमरसिंह! उस पर अब भी इन बातों का कुछ असर न पड़ा, अब भी वह पहले के समान सरदार की ओर टुकुर-टुकुर देखता रहा। अब तो चन्दावत सरदार मारे क्रोध के पागल हो उठे। महाराणा के सामने एक आइना रखा हुआ था। सरदार जी ने उसे उठा कर दीवाल से दे मारा और गरजते हुए राणा से कहा—"तुम्हें मेवाड़ की रक्षा के लिये तलवार पकड़नी ही पड़ेगी।" यह कहते-कहते सरदार जी ने राणा को, हाथ पकड़ कर सिंहासन से नीचे उतार लिया, और सब सरदारों

से चिल्ला कर कहा—"आप लोग इसे कलंक से बचाइए! यह कायर पूज्य महाराणा प्रताप का पुत्र है। इसे घोड़े पर सवार करा लड़ाई पर ले चलिए।"

बेचारे अमर के होश उड़े जा रहे थे। मारे अपमान, दुःख और क्रोध के उसका हृदय जला जा रहा था। सरदारों ने उसे घोड़े पर बिठा दिया। सब लोग पहाड़ से नीचे उतरने लगे। थोड़ी दूर चलने पर, मानों अमर को होश आ गया। वह अपने किये पर बार-बार पछताने लगा। अन्त में उसने सब के सामने चन्दावत सरदार से माफी माँगी और मुगलों से लड़ने की प्रतिज्ञा की। सरदार लोग इतना ही तो चाहते थे। उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। राजपूत सेना बड़े उत्साह से मैदान की ओर चली।

देवीर के मैदान में दोनों की मुठभेड़ हुई। धीरे-धीरे युद्ध जोर पकड़ने लगा। राणा अमरसिंह के बढ़ावा देने पर राजपूत सेना बड़े उत्साह से युद्ध करने लगी। सबेरे से दोपहर तक लड़ाई होती रही पर, हार-जीत किसी की न हुई। अन्त में शाम के समय मुगल सेना खिसिया कर राजपूतों पर तोपें दागने लगी। धाँय धाँय की आवाज से मैदान गूँज उठा। चारों ओर धुआँ ही धुआँ छा गया। पर राजपूत इससे घबड़ाये नहीं। वे अपनी तलवारें खींच धुएँ को चीरते हुए मुगल सेना की ओर बढ़ने लगे। बराबरी पर आते ही दोनों ओर से तलवार चलने लगी। इस समय राजपूत पागल के समान लड़ रहे थे। उन्हें सिवा 'मार-काट' के कुछ न सूझता था। मुगल सेना तलवार के युद्ध में राजपूतों के सामने न ठहर सकी और भाग निकली। राजपूतों ने बहुत दूर तक उसका पीछा किया। दिन भर के युद्ध के बाद विजय पा महाराणा अमरसिंह खुशी-खुशी उदयपुर में लौट आए।

अब महाराणा अमरसिंह का दिल खुल गया। उन्हें मरने मारने का कुछ डर न रहा। इसके बाद जहाँगीर ने जब-जब मेवाड़ पर सेना भेजी, तब तब अमरसिंह ने उससे लोहा लिया और दिल खोलकर वीरता दिखलाई। जीत तो मानों अमरसिंह के बाँटे ही पड़ी थी। हर बार उन्हीं की जीत होती थी। पर जहाँगीर ने भी उनका पिण्ड न छोड़ा। वे बार-बार मेवाड़ पर सेनाएँ भेजते रहे और जब तक उन्होंने अमरसिंह को अच्छी तरह हरा न दिया, तब तक उन्हें चैन न पड़ी।

महाराणा अमरसिंह अन्तिम युद्ध में हार गए। उन्होंने जहाँगीर से सुलह कर ली। परन्तु इससे अमरसिंह को बड़ा रंज हुआ। फिर राज-काज में उनका मन न लगा। तब राज्य अपने बड़े पुत्र कर्ण को सौंप राजन-चौकी नामक पहाड़ पर चले गए। वहीं उनका देहान्त हुआ।

(२०)

अमरसिंह राठौर

राजपूताने में मारवाड़ नाम का एक राज्य है। इसकी राजधानी जोधपुर है और आजकल यह इसी नाम से प्रसिद्ध है। कोई तीन सौ बरस हुए वहाँ महाराज गजसिंह राज्य करते थे। उनके दो पुत्र थे, अमरसिंह और यशवन्तसिंह। अमरसिंह बड़े थे और बड़े बहादुर थे। वे अपने पिता के साथ कितनी ही बड़ी-बड़ी लड़ाइयों में गए थे। हर बार अपनी वीरता से उन्होंने शत्रुओं को चकित कर दिया था। कई बड़े बड़े किले तो केवल अमरसिंह की बहादुरी से जीते गये। बहादुरों में अमरसिंह का नाम बड़ी इज्जत से लिया जाता था।

यह सब था, पर अमरसिंह में एक बड़ा ऐब था। वे

बड़े क्रोधी थे। उन्हें किसी की थोड़ी सी बात भी सहन न होती थी। जरा सी बात हुई कि अमरसिंह का क्रोध भड़का। पिता ने उन्हें बहुत समझाया कि बेटा, यह बुरी आदत छोड़ दो। पर, अमरसिंह न माने। होते-होते महाराज गजसिंह उनसे बहुत नाराज़ हो गये और अन्त में उन्हें अपने घर से ही निकाल देने का इरादा कर लिया। अमरसिंह बड़े थे और वही गद्दी के अधिकारी थे। पर महाराज गजसिंह ने छोटे पुत्र यशवन्तसिंह को ही गद्दी देने का विचार कर लिया।

एक दिन महाराज गजसिंह ने भरे दरबार में कह दिया—"अमरसिंह की आदतों से मैं ऊब उठा हूँ। अब मैं नहीं चाहता कि वह क्षण भर के लिए भी मेरे देश में रहे। जहाँ उसका जी चाहे, चला जावे।" इसके बाद महाराज की आज्ञा से अमरसिंह के लिए काले कपड़े लाये गये, घोड़ा भी काला ही लाया गया। अमरसिंह चुपचाप कपड़े पहन, दरबार से बाहर चले गये। वे अपने घोड़े पर सवार हुए और उन्होंने आगे की राह ली, मन ही मन जन्मभूमि को प्रणाम किया, पर पीछे फिर कर भी नहीं देखा। उनके बहुत से मित्र भी उनके साथ हो गये।

अब अमरसिंह को इस बात की चिन्ता हुई कि जायँ तो कहाँ जायँ। उस समय भारतवर्ष के बादशाह थे, महाप्रतापी शाहजहाँ। मित्रों ने अमरसिंह से कहा—"शाहजहाँ बहादुरों का आदर करते हैं। उन्हीं के दरबार में चलना चाहिए। उनके यहाँ रहने से दिन सुख से कटेगा।" अमरसिंह को यह सलाह पसन्द आयी। साथियों सहित आगरे जा पहुँचे।

शाहजहाँ ने बड़े प्रेम से अमरसिंह को अपने यहाँ नौकर रख लिया। अमरसिंह बहादुर तो थे ही; उन्होंने कई लड़ाइयों में बड़ी बहादुरी दिखलाई, बहुत से किले जीत लिये। बादशाह

बहुत जल्दी उन पर प्रसन्न हो गये। उन्होंने अमरसिंह को तीन हजार सिपाहियों का सरदार बना 'राव' की पदवी दी तथा राजपूताने का नागौर प्रदेश भी जागीर में दे दिया।

बादशाह सवेरे के समय 'आम खास' में दरबार करते थे, और उसमें सभी सरदारों तथा अमीर-उमराओं को हाजिर होना पड़ता था। जो सरदार या अमीर-उमरा दरबार में हाजिर नहीं होता था, बादशाह उस पर नाराज़ होते और कभी उस पर जुरमाना भी कर देते थे। एक बार ये बादशाह से बिना ही पूछे शिकार खेलने चलते बने, पन्द्रह दिन तक दरबार में न पहुँचे। आप सोलहवें दिन दरबार में पहुँचे। बादशाह आप पर बहुत नाराज़ हुए और उन्होंने आप पर जुरमाना भी कर दिया। आप बिगड़े दिल तो थे ही नाराज़ होकर बोले—"हुजूर, मैं शिकार खेलने चला गया था, इसी से दरबार में न आ सका। आप मुझे जुरमाने की धमकी देते हैं, पर मेरा सब कुछ तो इसी तलवार में है।" अमरसिंह के इस जवाब से बादशाह और भी नाराज हुए!

शाहजहाँ ने बख्शी सलावतखाँ को हुक्म दिया कि—अमरसिंह से अभी जुरमाना वसूल कर लाओ। सलावतखाँ और अमरसिंह में पहले से ही खटपट थी। बादशाह का हुक्म पाकर वह बड़ी खुशी से अमरसिंह के घर पहुँचा। उसने जाते ही अमरसिंह को बड़ी डाँट-फटकार दिखलाई। अमरसिंह को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने सलावतखाँ को जवाब दिया—"अगर आप अपनी भलाई चाहते हैं, तो अभी यहाँ से चले जाइए; मैं जुरमाने के नाम एक कौड़ी भी न दूँगा।" सलावतखाँ ने खूब निमक मिर्च लगाकर यह समाचार बादशाह को सुनाया! बादशाह का क्रोध और भी बढ़ गया, उन्होंने फौरन अमरसिंह को बुलवा भेजा।

अमरसिंह क्रोध में भरे तो बैठे ही थे, फौरन घोड़े पर सवार हो दरबार की ओर चले। दरबार में पहुँच कर उन्होंने देखा कि—सलावतखाँ हाथ जोड़े बादशाह से कुछ कह रहा है, मारे गुस्से के उनकी आँखें लाल हो रही हैं। यह देखते ही अमरसिंह का खून जल उठा। वे फौरन बादशाह की ओर झपटे। लोगों ने समझा कि वे बादशाह से कुछ कहेंगे। मगर बड़े-बड़े सरदारों और अमीरों की कतारें लाँघते हुए बिजली के समान बादशाह के सामने जा पहुँचे। उन्होंने चटपट कमर से कटार खींची और सलावत के पेट में घुसेड़ दी। सलावत दो-एक बार तड़प कर वहीं ठण्ढा हो गया। तब अमरसिंह ने वही कटार बड़े जोर से बादशाह पर फेंकी। कटार उनको न लग कर एक खम्भे में लगी। तब अमरसिंह ने अपनी तलवार सम्भाली। यह आफत देखते ही बादशाह महल में चले गये। दरबार में तलवारें चलने लगीं। उस समय अमरसिंह क्रोध के मारे पागल हो रहे थे। उनके सामने जो आता, वही मारा जाता। इस तरह से दरबार में पाँच बड़े-बड़े सरदार और अमीर मारे गए। सारे दरबार में खून ही खून नजर आने लगा।

इतने पर भी अमरसिंह का गुस्सा ठंढा न हुआ। वे अपने साथियों से मिलने के लिए किले के बाहर जाने लगे। परन्तु इस समय फाटक, जिससे अमरसिंह बाहर जाते थे, बन्द हो गया था। अमरसिंह घोड़े सहित फाटक लाँघ गए! गिरते ही घोड़ा मर गया। इसी समय अमरसिंह के बहनोई अर्जुन गोरे ने उनका काम तमाम कर दिया। उस फाटक का नाम "अमरसिंह फाटक" रख दिया गया। यह फाटक आगरे के किले में अब भी मौजूद है।

अमरसिंह के मरने की खबर सुनते ही उनके साथियों में खलबली मच गई। वे उसी समय हथियार ले लेकर किले में

आ पहुँचे और लगे मार-काट मचाने। अन्त में वे लोग भी एक एक करके मारे गये। अमरसिंह की रानी बूँदी की राजकुमारी थी। वह भी बड़ी बहादुर थी। पति के मरने की खबर सुन वह बड़ी बहादुरी से लड़ती हुई आई और किले में से अपने पति की लाश उठा ले गयी। रानी उसी दिन सती हो गयी।

ज़रा से क्रोध के पीछे उस दिन कितनी खून खराबी हो गयी। बादशाह अमरसिंह को बहुत चाहते थे, उनके मरने से उन्हें बड़ा अफसोस हुआ। उन्होंने अमरसिंह की जगह उनके पुत्र को दी। यही नहीं, उन्होंने नागौर का प्रदेश भी उसे दे दिया।

उस दिन से 'अमरसिंह फाटक' बन्द था। जो उस फाटक को खोलता, उसे, वहाँ से एक अजगर निकल कर डस लेता था। उस साल गदर के बाद कप्तान स्टील ने उसे खोलने का विचार किया। लोगों ने उन्हें बहुत रोका, पर वे न माने; उन्होंने फाटक खोल ही दिया। सचमुच वहाँ से एक अजगर निकलकर कप्तान साहब पर झपटा। साहब ने भाग कर जान बचाई। अजगर एक ओर को चला गया। तब से यह फाटक खुलने लगा है।

(१२)

शिवाजी और शाइस्ता खाँ

शिवाजी के पिता का नाम शाहजी था। वे एक मामूली जागीरदार थे। परन्तु शिवाजी ने अपनी वीरता और चतुराई से एक बड़े राज्य की जड़ जमा दी थी। शाहजी बीजापुर के सुल्तान के दरबार में रहते थे और शिवाजी अपनी माता जीजीबाई के साथ पूना में। जब शिवाजी कुछ बड़े हुए

तब जीजीबाई ने उन्हें भाला, तीर और तलवार चलाने की शिक्षा दिलवायी। थोड़े ही दिनों में वे इस फन में होशियार हो गये। तब उन्होंने थोड़े से आदमी नौकर रख एक छोटी-सी फौज बना ली। धीरे-धीरे उनका बल चढ़ चला।

अब शिवाजी यहाँ-वहाँ छापा मारने लगे। एक-एक करके उन्होंने बीजापुर के कई किले अधिकार में कर लिए। उनका बल बढ़ता देख बीजापुर के सुल्तान डर गए। उन्होंने शिवाजी से सुलह कर ली। जब शिवाजी को बीजापुर वालों का डर न रहा, तब वे मुगल राज्य में लूट मारने लगे! उस समय दिल्ली के बादशाह थे—महा पराक्रमी औरङ्गजेब। अपने राज्य में शिवाजी को ऊधम मचाते देख बहुत नाराज हुए। उन्होंने शाइस्ताखाँ नाम के एक बड़े सरदार को हुक्म दिया कि उस शैतान की बहुत जल्दी मरम्मत करो।

बादशाह का हुक्म पा शाइस्ताखाँ एक लाख फौज लेकर औरङ्गाबाद से पूने की तरफ चले। चलते समय उन्होंने प्रतिज्ञा की कि मेरा नाम शाइस्ताखाँ नहीं, जो मैं शिवाजी के सब किले न छीन लूँ। उनके साथ जोधपुर के राजा यशवन्त सिंह भी थे, वे बड़े बहादुर थे, उनके साथ होने से शाइस्ताखाँ का बल बहुत बढ़ गया। उन्होंने शीघ्र ही शिवाजी के सब किलों पर अधिकार जमा लिया। फिर पूना की राह ली और उसी महल में डेरा जमाया, जिसमें शिवाजी अपने लड़कपन में रहते थे। शाइस्ताखाँ ने पूने में डेरा डाल कर अपनी रक्षा का पूरा बन्दोबस्त कर लिया और हुक्म निकाला कि मेरी आज्ञा के बिना शहर में कोई आ जा नहीं सकेगा।

अब शिवाजी बड़ी चिन्ता में पड़े। उनके पास इतनी सेना थी नहीं कि उतनी बड़ी मुगल सेना से खुल कर लड़ते और शाइस्ताखाँ को वहाँ से हटाना जरूरी था। सोचते-सोचते उन्हें

एक उपाय सूझ पड़ा। उपाय यह था कि यदि यशवन्तसिंह कुछ मदद करे तो काम बन जाय। शिवाजी ने खुद ही यह काम करने के लिए कमर कसी। उन्होंने शाइस्ताखाँ के पास खबर भेजी, कि मैं आपके आने से ही डर गया हूँ, मुझमें इतनी हिम्मत नहीं, कि आपका मुकाबला कर सकूँ। यदि आप सुलह करलें, तो बड़ी कृपा हो। इस खबर से शाइस्ताखाँ, शिवाजी की ओर से बेफिकर हो गये। इधर शिवाजी चुपचाप महाराज यशवन्तसिंह के पास पहुँचे। दोनों राजा बड़े प्रेम से मिले। बातों ही बातों में यशवन्तसिंह ने शिवाजी से कहा—"मैं आपको लड़ने की सलाह न दूँगा! यदि आप लड़ेंगे ही, तो सिवा हार के आपके हाथ कुछ न लगेगा।" शिवाजी ने जवाब दिया—'महाराज मैं लड़ने से तो डरता नहीं, पर क्या आप लड़ाई में अपनी ही जाति का खून बहावेंगे ?" शिवाजी की इस बात का यशवन्तसिंह पर अच्छा असर पड़ा। तब शिवाजी ने फिर उनसे कहा—"मैं तो आपसे सहायता पाने की आशा करता हूँ। आप थोड़ी सहायता करें, बाकी काम मैं बना लूँगा। मैं शहर में एक बारात निकालूँगा। आप शाइस्ताखाँ से उसे निकालने की आज्ञा दिलवा दीजिये। किसी को मालूम न होगा कि यह बारात शिवाजी की है।" यशवन्तसिंह शिवाजी की बातों में आ गये। उन्होंने शाइस्ताखाँ से बारात को निकालने की आज्ञा दिलवा दी।

दूसरे दिन शिवाजी ने एक बारात सजाई। एक लड़का दूल्हा बनाया गया। बीस पचीस मराठे भेष बदल कर बाराती बन गए। सभी हथियारों से लैस थे। बड़ी धूम-धाम से बारात निकली। शहर कोतवाल ने कुछ भी रोक-टोक न की। सभी लोग गाते-बजाते अपने निश्चित स्थान पर पहुँच गये। बारात के

साथ और भी बहुत से मराठे, मुसलमानों के वेष में, शहर में घुस आये और जहाँ-तहाँ छिप रहे।

रमजान का महीना था। मुसलमान दिन भर रोजा रखने से वैसे ही थक जाते थे, और अब शिवाजी की तरफ से बेफिकर भी हो चुके थे। शाइस्ताखाँ भोजन कर जल्दी सो गये। और लोग भी जहाँ-तहाँ सो रहे। रात के बारह बजे चारों ओर सन्नाटा छा गया। शिवाजी ने अपना काम करने का विचार किया। कुछ लोगों को साथ लेकर वे शाइस्ताखाँ के महल की ओर चले। मुख्य द्वार पर पहुँच कर उन्होंने देखा, कि अभी तो यहाँ उजेला हो रहा है और कुछ पहरेदार भी जाग रहे हैं। तब वे महल के पिछवाड़े जा पहुँचे। वहाँ दरवाजा था, जो ईंटों से चुन दिया गया था। मराठे उसमें सेंध लगाने लगे।

ईंटों के निकलने की आवाज से महल के कुछ नौकर जाग उठे। उन्होंने जाकर शाइस्ताखाँ से कहा। पर उस समय वह नींद में गाफिल हो रहे थे, उन्होंने नौकर को डाँट दिया और फिर आँखें मींच लीं। इतने में मराठों ने सेंध पार कर ली और पच्चीस-तीस आदमी भीतर घुस आये। उन्होंने महल में एक कोठे की खिड़की भी खोद डाली। तब एक नौकर ने फिर शाइस्ताखाँ को खबर दी, पर खाँ साहब की नींद न खुली। इतने में एक बाँदी फिर उनके पास पहुँची और बोली—"हजूर उठिये तो, महल में दुश्मन आ पहुँचे हैं।"

तड़ाक से खाँ साहब की नींद खुल गयी। उन्होंने फौरन अपना धनुष और भाला सँभाला। इतने में ही शिवाजी कई साथियों के साथ वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखते ही शाइस्ताखाँ ने तीर छोड़ कर एक मराठे को गिरा दिया। तब एक मराठे ने खाँ साहब पर तलवार का वार किया, जिससे उनका अँगूठा कट गया। उन्होंने भी क्रोधित होकर बड़े जोर से उस पर भाला

चलाया। भाले के लगते ही मराठे के प्राण-पखेरू उड़ गये। इस बीच में खाँ साहब के भी कई आदमी वहाँ आ गए थे। अब मराठों ने बड़े झपाटे से कोठे के किवाड़ बन्द कर दिये, जिससे वहाँ खाँ साहब की मदद को कोई न आ सका।

शाइस्ताखाँ के रंगमहल में कसकर लड़ाई होने लगी। खून के फुहारे छूटने लगे। शिवाजी के आदमियों ने थोड़ी देर के बाद खाँ साहब के आदमियों को हरा दिया। यह देख खाँ साहब के आदमी मदद के लिए ढोल बजाने लगे। पर दरवाजे बन्द होने के कारण कोई वहाँ न आ सका। हाँ, खाँ साहब का पुत्र अब्दुल फतेहखाँ वहाँ किसी प्रकार आ पहुँचा। उसने आते ही तलवार चलाना शुरू कर दिया। अब तक युद्ध करने और अनेक घावों के हो जाने से शाइस्ताखाँ बेहोश हो गये थे। मौका पाते ही दो बहादुर बाँदियाँ, उन्हें वहाँ से उठा ले गईं। थोड़ी देर की लड़ाई के बाद फतेहखाँ मारा गया। इसी समय मराठों ने एक मुसलमान को रस्सी की सीढ़ी लगाकर भागते देखा। उसका रूप रंग शाइस्ताखाँ से मिलता था। उसे शाइस्ताखाँ जान मराठों ने तुरन्त तलवार के घाट उतार दिया।

शाइस्ता खाँ को मरा जान शिवाजी की खुशी का ठिकाना न रहा। उनका काम पूरा हो चुका। उन्होंने वहाँ ठहरना ठीक न समझा। चटपट महल के किवाड़ खोल और अपनी सेना में जा मिले। वे एक मिनट के लिए भी पूने में न ठहरे, फौरन अपने किले सिंहगढ़ की राह ली। नगर के बाहर भी उनकी कुछ फौज छिपी हुई थी। वहाँ भी शिवाजी ने चतुराई का एक काम किया था। उन्होंने शहर के बाहर कुछ दूर बहुत से जानवर इकट्ठा कर रखे थे। उनके सींगों और पेड़ों की बहुत सी डालियों में पलीते बाँध दिये गये थे। शिवाजी ने वहाँ पहुँचते ही पलीते में आग लगा दी और ढोरों को एक ओर खदेड़ सिंहगढ़ की

राह ली। इधर महल की गड़बड़ी सुन बहुत से मुसलमान सिपाही आ पहुँचे। उन्होंने दुश्मन को भगा देख उसका पीछा किया। जिस ओर उजाला हो रहा था, उसी ओर की राह ली। पर वहाँ किसी को भी न पा निराश होकर लौट आये। शिवाजी बेदाग़ निकल गये।

दूसरे दिन शाइस्ता खाँ ने औरङ्गाबाद की राह ली। यह हाल सुन औरंजेब उन पर बहुत नाराज हुए और उनकी बदली बंगाल को कर दी।

शिवाजी ने बहादुरी और चतुराई के जितने काम किये थे, यह भी उन्हीं में गिना जाता है।

(२२)

शिवाजी की मृत्यु

धीरे-धीरे शिवाजी ने अपने बुद्धि-बल से बहुत बड़ा राज्य प्राप्त कर लिया। जो शिवाजी एक दिन दस-पन्द्रह गाँवों के स्वामी थे, उन्हीं के पास इस समय हज़ारों गाँव थे। पचासों किलों पर उनके झंडे फहराते थे। उनकी सेना भी अब बहुत बढ़ गयी थी। उन्होंने अपनी उमर के दिन लड़ने-भिड़ने और राज्य जमाने में ही बिता दिये थे। मराठों को आशा थी कि अब शिवाजी बहुत दिन तक हमारे बीच में रहेंगे और राज्य की दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति होगी।

परन्तु मनुष्य की आशा हमेशा पूरी नहीं होती। केवल ५३ बरस की उमर में ही शिवाजी ऐसे बीमार हुए कि फिर अच्छे न हुए। बड़े-बड़े चतुर हकीम और वैद्य हार मान बैठे, पर बीमारी ने हार न मानी। धीरे-धीरे मृत्यु का समय निकट आ गया। शिवाजी ने मोरोपन्त पेशवा, प्रह्लादपन्त न्यायाधीश, बालाजी आपाजी चिटनवीस, आदि बड़े-बड़े अफसरों को अपने

पास बुलाया। सब लोग आए, उन्हें प्रणाम कर उनके पलंग के चारों ओर बैठ गये। शिवाजी ने उनसे कहा—"बीमारी ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा! अंग-अंग टूट चुके हैं। मैं थोड़ी ही देर का मेहमान हूँ—शीघ्र ही मेरे जीवन का दीपक बुझ जायगा।" इस समय शिवाजी के चेहरे पर बड़ी चिन्ता छा रही थी—उन्हें बड़ा दुःख हो रहा था। उनकी बातें सुनकर सभी घबड़ा गए। किसी किसी की आँखें भर आईं और कोई ठण्डी साँस लेने लगे।

तब शिवाजी बोले—"आप लोग मेरी बातें ध्यान से सुनिए! मुझे मरने का कोई रञ्ज नहीं है। इस संसार में अमर होकर कोई नहीं आया। आदमी पैदा होने के दिन मरने का समाचार ले आता है। मरना कोई नई बात नहीं—इसके लिए क्या रञ्ज करना? मुझे रञ्ज दूसरी बात का है। आपको मालूम है कि किसी समय मैं दस-पाँच गावों का मालिक था, आज इतने बड़े राज्य का स्वामी हूँ। इस राज्य को जमाने में मैंने दिन को दिन और रात को रात नहीं समझा, सारी उमर इस राज्य के पीछे दुःख सहते-सहते ही बिता दी, इस राज्य के पीछे मराठों का खून किस प्रकार पानी के समान बहाया गया है—ये सब बातें आप लोगों से छिपी नहीं हैं।"

इतना कहते-कहते शिवाजी रुक गए। थोड़ा ठहर कर फिर बोले—"हाँ तो मुझे रञ्ज इस बात का है कि मेरे बाद इस राज्य का क्या होगा? हिन्दुओं के इस राज्य की रक्षा कौन करेगा? दुश्मन चारों ओर फैले हुए हैं, वे मेरे इस राज्य को जबरदस्ती छीन लेना चाहते हैं, अब तक तो मैं किसी प्रकार उनके हाथ से इसे बचाए रहा, पर अब मुझे संदेह है कि यह बच सकेगा या नहीं? औरंगजेब को तो आप लोग जानते

ही हैं। मेरे मरने की खबर सुनते ही उसकी फौजें इस राज्य पर बाज़ के समान टूट पड़ेंगी। ये ही बातें सोच-सोच कर मेरा मन घबड़ा रहा है। मेरी आत्मा नहीं चाहती कि मेरे बाद आप के इस राज्य के टुकड़े-टुकड़े हो जायँ। मेरे पुत्र तो हैं, पर उनका हाल भी आप से छिपा नहीं। बड़ा पुत्र शम्भा जैसा बहादुर है, वैसा ही बेवक़ूफ भी है। राजाराम से राज्य सँभालने की आशा की जा सकती है, पर वह अभी लड़कपन के दिन गिन रहा है। दूसरी बात यह है कि नियम के अनुसार बड़े पुत्र शम्भा को ही राज्य मिलना चाहिए। परन्तु उसका स्वभाव बहुत खोटा है। यह बात बिलकुल सच है कि वह अच्छे लोगों को निकाल बाहर करेगा और हमेशा नीच तथा खोटे लोगों की संगति में समय बितावेगा। यदि राज्य राजाराम को देता हूँ तो डर इस बात का है कि लोग शम्भा की तरफ न हो जायँ और सेना अपने ही देश में गड़बड़ी मचा बैठे। दोनों बेटों में भी राज्य बराबर बराबर बाँट देना ठीक नहीं जँचता। इसमें इस बात का डर है, कि मतलबी लोग अपना उल्लू सीधा करने के लिए ज़रूर दोनों भाइयों में तलवार चलवा देंगे। सो मुझे तो चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा सूझ पड़ता है। बुद्धि काम नहीं करती!"

शिवाजी की ये बातें सुनकर सरदारों में घबराहट फैल गयी। कोई-कोई तो फूट-फूट कर भी रोने लगे। तब शिवाजी ने फिर उनसे कहा -"मैं पहले ही कह चुका हूँ कि रोने-धोने की ज़रूरत नहीं। संसार में आकर हमेशा कौन जीता रहता है। कुछ आज मैं ही तो मरता नहीं। इसलिए सब लोगों को प्रसन्न रहना चाहिए सब लोग कृपा कर मेरी बातों पर विचार कीजिए और उपाय निकालकर मेरी चिन्ता दूर कीजिए, जिससे मैं सुख से मर सकूँ।"

मोरोपन्त पेशवा आगे बढ़कर बोला—"महाराज; हम तो केवल आपके बिछुड़ने की बात सोचकर रोते हैं। आप राज्य के लिए बिलकुल चिन्ता न कीजिये। उसके विषय में तो हम लोग पहले ही सोच चुके हैं। शंभाजी हम लोगों के राजा बनेंगे। हम उन्हीं से मराठों के इस राज्य की रक्षा करावेंगे। और यदि वे इसकी रक्षा करने में पीछे हटेंगे, तो हम राज्य के लिए अपना खून बहा देंगे। आप विश्वास कीजिए; आपके बाद भी यह राज्य बढ़ेगा, घटेगा नहीं।"

यह सुनते ही शिवाजी की चिन्ता का भार हलका हो गया। वे प्रसन्न होकर उठे। उन्होंने गंगाजल से स्नान किया, हवनकुंड की राख शरीर में मली। गले में रुद्राक्ष की माला पहनी। इसके बाद वे कुशासन पर जा बैठे और विद्वान् ब्राह्मण से धर्म की बातें करने लगे। पंडित लोग मीठी आवाज से गीता का पाठ करने लगे। थोड़ी देर बाद 'राम-राम' रटते हुए शिवा जी ने सुख से प्राण त्यागा। वे इतने बड़े राजा थे, लाखों आदमियों का भाग्य उनके हाथ में था, उनकी सेना में एक से एक बढ़कर बहादुर थे, धन-दौलत की उनके पास कुछ कमी न थी, फिर भी प्राण त्यागते हुए उन्हें किसी बात का दुःख न हुआ।

शिवाजी के मरते ही राज्य भर में हाहाकार मच गया। उनकी मृत्यु की खबर चारों ओर फैल गयी। राजकुमार राजाराम ने सिंगनापुर के भोंसले की सहायता से पिता की अन्तिम क्रिया की। शिवाजी की तीसरी रानी उनके साथ सती हो गई। उस समय लाखों रुपये के कपड़े, गौ, घोड़े और हाथी दान किए गए।

गोपाल का हठ

बरसात के दिन बीत चुके थे। दशहरे का त्यौहार आया। गोविन्द पटवर्धन के यहाँ बहादुर लोगों की मण्डली जमा हुई। सब लोग इस बात का विचार करने लगे, कि अब लड़ाई का समय आ गया है, नए-नए देश जीतने के लिए, लड़ाई पर किन-किन सरदारों को ले चलना चाहिए? खिलाड़ी लड़के, रोज-रोज लड़ाई की कहानियाँ सुनते-सुनते लड़ाई देखने की इच्छा कर चुके थे। आज कोई अपने पिता से और कोई काका से इस बात की जिद्द कर रहे थे, कि हमें भी रणांगना* के किले में ले चलो! इन्हीं बातों में भोजन का समय हो गया।

सब लोग एक बाड़े में भोजन करने के लिए इकट्ठे हुए। जो जिस दर्जे के योग्य था, उसे उसी तरह के बासनों में भोजन परोसा जाने लगा। बड़े-बड़े सरदारों को सोने की थालियों में, उनके लड़कों को चाँदी की थालियों में और कई लोगों को केले के पत्तों पर ही भोजन परोसा गया।

गोविंदराव का बेटा गोपाल भी वहाँ भोजन करने आया। अपने सामने चांदी की थाली और सरदारों के सामने सोने की थालियाँ देख उसे बड़ा अचरज हुआ—कुछ बुरा भी लगा। वह मन में सोचने लगा कि इन लोगों का इतना आदर क्यों किया जा रहा है। मैंने ऐसा क्या काम किया है, जो मुझे सोने की थाली में भोजन न परोसा गया। बहुत सोचने पर भी जब उसकी समझ में यह बात न आई, तब तो मारे क्रोध के वह वहाँ से उठ कर घर के एक कोने में जा बैठा और लगा सिसक-सिसक कर रोने।

पंगत में गोपाल को न देख गोविन्दराव उसे ढूँढने के लिए

*रणांगना का किला दक्षिण में था, वहां मराठों का अधिकार था।

निकले। उसे यहाँ वहाँ देखते हुए वे उसी जगह जा पहुँचे, जहाँ गोपाल रूठा हुआ बैठा था। उसे रोता देख गोविंदराव ने उससे कहा—'बेटा, तुम यहाँ बैठे-बैठे क्यों रो रहे हो? चलो, पंगत बैठ चुकी है।' पर गोपाल ने पिता को कुछ जवाब न दिया। उन्होंने उसे बहुत समझाया पर वह तो एकदम चुप्पी साध कर बैठा था—उसने बोलने के नाम मुँह तक न हिलाया। इतने में वहाँ और लोग भी आ पहुँचे और कहने लगे—'चलिए चलिए गोपाल जी! कुछ रोने से तो पेट भरेगा नहीं।' पर गोपाल फिर भी चुप रहा। अब तो गोविन्दराव को गुस्सा आ गया। उन्होंने गरज कर कहा—'अबे! बोलता क्यों नहीं? तुझे क्या चाहिए? इस तरह क्यों चुप्पी साध बैठा है?' तब उसने धीरे से जवाब दिया—'मुझे भी सोने की थाली मिलनी चाहिए। मैं चाँदी की थाली में भोजन न करूँगा।'

यह सुन गोविन्दराव ने हँसकर कहा—"बेटा, आज जिन लोगों के सामने सोने की थालियाँ रखी गई हैं, उन्होंने बड़े-बड़े काम किए हैं, रणांगना में जाकर बड़ी बहादुरी दिखलाई है, शत्रुओं को जीतकर नए-नए देशों पर अधिकार किया है। शरीर पर भी घावों के चिन्ह हैं। घर में बैठकर रोने से सोने की थाली नहीं मिलती। जब तुम लड़ाई पर जाओगे और बहादुरी के काम करोगे, तब तुम्हें भी सोने की थाली मिलेगी, अभी नहीं। बस अब चटपट उठो और पंगत में चलो। तुम्हारे पीछे सब लोग रुके हैं।"

बाप की बातें सुन गोपाल की तबीयत फड़क उठी। वह तेजी से बोला—"अच्छा पिता जी अगर ऐसा है, तो मैं भी लड़ाई पर जाऊँगा और बहादुरी के काम करूँगा। तब तक सोने की थाली तो क्या पीतल की थाली में भी भोजन न

करूँगा। केवल केले के पत्तों में ही भोजन करूँगा।" इसके बाद उसने पंगत में जाकर केले के पत्तों पर भोजन किया।

गोपाल को बात लग गयी थी। वह उसी समय से हर साल पिता के साथ लड़ाई पर जाने लगा। धीरे धीरे उसने लड़ाई के सब काम सीख लिए, उसका दिल खुल गया। बड़े होने पर उसने बहादुरी के नामी-नामी काम कर दिखाए। उसने कई लड़ाइयों में दुश्मनों पर अच्छी मार की। दक्षिण में चारों ओर उसका नाम फैल गया। जहाँ देखो, वहीं उसकी बड़ाई होने लगी। अन्त में पटवर्धन सरदारों में गोपालराव बहुत ही बहादुर समझे जाने लगे। गोपालराव का नाम सुनते ही शत्रु थर-थर काँपने लगते थे।

इस तरह गोपालराव ने छुटपन ही में सोने की थाली पाने का हठ किया, और पिता का उपदेश पाने पर वह काम कर दिखाया, जिससे उन्हें सोने की थाली मिल गयी। इतना ही नहीं, उनकी बदौलत आगे उनके वंश वालों को भी सोने की थाली में भोजन करने का अधिकार मिल गया। सांगली नामक स्थान में दशहरे के त्यौहार पर, अब भी पटवर्धन-वंश के लोग; श्रीमान् लोगों के साथ सोने की थाली में भोजन करते हैं।

(२४)

भूषण और उनकी भौजाई

पंडित भूषण त्रिपाठी हिन्दी-भाषा के अच्छे कवि हो गए हैं। वे कानपुर जिले के रहने वाले थे। कहते हैं कि भूषण जी पहले कुछ भी पढ़े-लिखे न थे—पूरे निरक्षर भट्टाचार्य थे। उनके बड़े भाई चिन्तामणि जी भी हिन्दी-भाषा के अच्छे कवि थे। वे मुगल बादशाह के दरबार में रहते, और वहीं अपनी कविता भी सुनाया करते थे। इससे उन्हें अच्छी

आमदनी हो जाती थी। भूषण जो घर पर ही रहते, भाई की कमाई खाते, और इधर-उधर उठाईगीरे के समान घूमा फिरा करते थे।

चिन्तामणि जी तो भूषण से कुछ न कहते थे, पर उनकी पत्नी को भूषण की आदत बिलकुल पसन्द न थी। वह जब देखो, भूषण को ताने मारा करती थी। भूषण भौजाई की बातें सुनकर केवल हँस देते थे। एक दिन की बात है बट सावित्री का त्यौहार था। सब स्त्रियाँ बट वृक्ष की पूजा करने को गईं। चिन्तामणि की पत्नी के साथ भूषण की पत्नी भी पूजा करने को गई थी। उस बेचारी के पास क्या रखा था, जो वह दान दक्षिणा देती। तब उसने जेठानी से एक पैसा माँगा। इस पर जेठानी भूषण की स्त्री पर बहुत बिगड़ी। उसने झल्ला कर उससे कहा—"ओहो! बड़ी दान करने वाली आई है। तेरा पति तो नमक की एक डली भी कमा कर नहीं लाता, मैं तुझे एक पैसा कहाँ से दूँ!" जेठानी की इन कड़ी बातों से भूषण की पत्नी को बड़ा दुःख हुआ। हजार स्त्रियों में उसका इस प्रकार अपमान हुआ। बेचारी की आँख भर आई।

घर आकर उसने सब हाल भूषण को सुनाया। स्त्री का ऐसा दुःख भरा मुखड़ा देख भूषण के हृदय पर बड़ी चोट लगी। उन्होंने उसी समय प्रतीज्ञा की कि अब, जब कुछ कमाई करके लाऊँगा, तभी घर में भोजन करूँगा!

उसी दिन भूषण घर से निकल खड़े हुए। उन्होंने विद्या पढ़ी और कविता का अभ्यास किया। इसके बाद वे भूलते-भटकते महाराज शिवाजी के दरबार में पहुँचे। उनकी कविता सुनकर शिवाजी बहुत खुश हुए। भूषण को बहुत कुछ इनाम दिया। भूषण ने बहुत सा नमक खरीद कर भौजाई के पास भिजवा दिया।

इसी प्रकार एक बार की बात और है, भूषण गऊ के लिए सिर पर घास का गट्ठर लादे घर आ रहे थे। बीच दरवाजे में उनकी भौजाई पैर पसारे बैठी हुई थी। भूषण ने उससे नम्रता पूर्वक कहा—"रास्ता छोड़ दो", उनका इतना कहना था, कि वह झल्ला उठी और ताना मार कर बोली—"अहा! क्या कहना है? कुंवर जी तो मानों हाथी लादे आ रहे हैं।" भूषण ने उसे जवाब तो कुछ न दिया, पर बात उन्हें लग गई। उन्होंने ऊपर को सिर उठा हाथ जोड़कर कहा—"हे ईश्वर! मेरी लाज—मेरी बात तुम्हारे हाथ में है।"

उसी दिन भूषण घर से निकल खड़े हुए। उन्होंने दिन को दिन और रात को रात न समझ विद्या पढ़ी, कविता करना भी सीखा। धीरे धीरे वे अच्छे कवि हो गये। तब अपना भाग्य अजमाने के लिए निकले। पहले वे दिल्ली के बादशाह औरङ्गजेब के दरबार में पहुँचे। वहाँ उनकी गुजर न हुई। एक दिन बादशाह उनपर नाराज हो गये। तब भूषण ने दिल्ली से छुट्टी ले, दक्षिण की राह ली। शिवाजी के दरबार में पहुँचे। शिवाजी ने उनका बड़ा आदर किया और उन्हें कई हाथी तथा ढेर के ढेर रुपये इनाम में दिये। उनकी आँखों में आँसू भर आए। उन्होंने हाथ जोड़कर भगवान को प्रणाम किया और कहा—"हे प्रभु! तुमने मेरी लाज रख ली।"

इसके बाद भूषण जी ने रुपयों से लदा हुआ एक हाथी भौजाई के पास भिजवा दिया।

---

(२५)

नाहरखाँ

जोधपुर के महाराज यशवन्तसिंह जैसे वीर और साहसी थे, उनके बहुत से साथी भी वैसे ही थे। उनमें से एक का नाम मुकुन्ददास था। मुकुन्ददास की गिनती यशवन्त सिंह के मुख्य सरदारों में की जाती थी। उसकी वीरता से महाराज बहुत प्रसन्न रहते, और उसे सदा अपने साथ रखते थे। वह भी महाराज को बहुत चाहता था। उसने कितने ही बार महाराज के प्राण बचाये थे, और कई बड़ी बड़ी लड़ाइयाँ जीती थीं। इन्हीं कारणों से महाराज यशवन्तसिंह को उस पर बड़ा घमण्ड था।

एक बार मुकुन्ददास ने बादशाह औरंगजेब के एक दूत का बड़ा अपमान किया। इससे बादशाह बहुत नाराज हुए। उन्होंने मुकुन्ददास को यह सजा दी; कि वह बिना हथियार एक मस्त शेर के पिंजड़े में छोड़ दिया जाय, जिससे शेर उसे देखते ही देखते चीर फाड़ डाले।

सजा का हुक्म सुनकर मुकुन्ददास को जरा भी रंज न हुआ। भरे दरबार में शेर का पिंजड़ा लाया गया और मुकुन्ददास को उसमें घुसने की आज्ञा दी गई। वह मुस्कुराता हुआ उठा। उसने अपने सब कपड़े उतार दिये और लंगोट खींच लिया। इसके बाद वह पिंजड़े की खिड़की खोल चटपट उसमें घुस गया, मानों वहाँ कुछ डर है ही नहीं। सब लोग एकटक पिंजड़े की ओर देखते रहे और मन ही मन सोचते थे कि शेर ने मुकुन्द को अब खाया—अब खाया।

परन्तु दूसरे ही क्षण पिंजड़े में जो कुछ हुआ, उसे देख कर सब लोग दंग रह गये—उनका अचरज सौगुना बढ़ गया।

मुकुन्द हँसते-हँसते पिंजड़े में जा घुसा। शेर बड़े घमंड से पिंजड़े में चारों ओर चक्कर काट रहा था। मुकुन्द को देखते ही वह गरज उठा। सब लोगों के दिल दहल गये। इतने में ही मुकुन्द ने गरज कर शेर से कहा—"अरे बादशाह के शेर! जरा इधर को तो आ। यशवन्त के शेर से तेरे दो हाथ हो जायँ।" यह कहते कहते मुकुन्द की आँखें लाल हो उठीं— मानों उनसे आग निकल रही हो। बाघ भी असावधान हो गरज गरज कर मुकुन्द की ओर देखने लगा मुकुन्द भी उसे बार-बार ललकारने लगा। लोगों ने सोचा—अब दोनों शेरों के भिड़ने में देर नहीं। परन्तु इतने में क्या हुआ, कि ज्योंही शेर की नजर मुकुन्द की नजर से मिली त्यों ही वह दुम दबा मुँह फेर कर बैठ रहा। मुकुन्द ने उसे कितना ही ललकारा; पर उसने फिर कर देखने का नाम भी न लिया। तब मुकुन्द ने वहीं से कहा—"यह मुझसे बिना लड़े हार गया। हारे हुए शत्रु पर हाथ उठाना राजपूत का धर्म नहीं।" वह बहादुर पिंजड़े से बाहर निकल आया। उसकी बहादुरी देख सभी सन्नाटे में आ गये। यशवन्त की छाती मारे खुशी के फूल उठी उन्होंने दौड़कर मुकुन्द को गले से लगा लिया।

बादशाह भी बहुत खुश हुए। उन्होंने मुकुन्द की पीठ ठोंकते-ठोंकते कहा—"शाबाश बहादुर! तुम्हारी बहादुरी से मैं बहुत खुश हुआ। आज से तुम्हारा नाम नाहरखाँ हुआ!" फिर उन्होंने नाहरखाँ को बहुत कुछ इनाम दिया और उससे पूछा—"बहादुर ठाकुर। इसमें कोई शक नहीं, तुम्हारे जैसे बहादुर सिपाही मेरी सेना में बहुत ही थोड़े निकलेंगे। पर यह तो बतलाओ कि तुमने अपने जैसे बहादुर बेटे कितने पैदा किए हैं?"

नाहरखाँ ने जबाब दिया—"आपकी मेहरबानी से मैंने बरसों से घर की सूरत नहीं देखी! मेरे इतने दिन लड़ाई के मैदान में ही बीते हैं! तब हुजूर खुद सोच सकते हैं, कि मेरे बच्चे कहाँ से होंगे?"

बादशाह ने उसी समय नाहरखाँ को, घर जाने के लिए बहुत दिनों की छुट्टी दे दी।

नाहरखाँ कितना बहादुर था, कैसा साहसी और निडर था; यह बतलाने के लिए उसकी एक कहानी और लिखी जाती है।

नाहरखाँ अक्खड़ और मुँहफट आदमी था। डर किसे कहते हैं—यह तो वह जानता ही न था। मुँह में जो आता; चट से कह बैठता चाहे किसी को बुरा लगे, चाहे भला। एक दिन बातों ही बातों में वह औरङ्गजेब के शाहजादे से कुछ कह बैठा। शाहजादे ने सोचा किसी तरह इस पाजी का काम तमाम होना चाहिए। उन्होंने उपाय भी सोच लिया।

एक दिन शाहजादे साहब ने कुछ प्रसन्नता दिखला कर नाहरखाँ से कहा—"बहादुर सिपाही! मैं खूब जानता हूँ, कि तुम कैसे बहादुर हो। मैं कई बार तुम्हारी बहादुरी के तमाशे देख चुका हूँ। लड़ाई में तुम्हारी जैसी तलवार बहुत कम लोग चलाते हैं। अभी उस दिन तुमने बातों ही बातों में शेर को छका दिया था। अच्छा, अब यह बताओ कि तुम घोड़े को सरपट दौड़ाते हुए, उसकी पीठ पर से उछल कर पेड़ की लम्बी डाल पकड़ कर उससे झूल भी सकते हो या नहीं?"

शाहजादे ने यह कुछ नई बात न कही थी। बहुत से राजपूत अपनी खुशी से ऐसे खेल करते थे। ऐसे खेल में बल और फुर्ती की बड़ी जरूरत होती है। डाल पकड़ ली, तब तो ठीक और कहीं जो दाँव चूका, तो फिर क्या है, धरती पर अण्टा-

चित्त ! नाहरखाँ शाहज़ादे के मन की बात ताड़ गया। उसने जवाब दिया—"वाह हुजूर ! क्या मैं बन्दर हूँ, जो आपको ऐसा खेल दिखाऊँ ! मैं राजपूत हूँ। केवल तलवार का खेल जानता हूँ। यदि वह खेल देखना चाहते हो तो किसी बहादुर को तलवार देकर खड़ा कर दीजिए, फिर तमाशा देखिए।"

अब शाहज़ादे साहब क्या कहते ? नाहरखाँ की बातों ने उन्हें चुप कर दिया।

---

(२६)

गुरु-भक्त शिष्य

सिक्ख लोगों का नाम तो आपने सुना ही होगा। वे लोग पंजाब प्रदेश में ज्यादातर रहते और सिक्ख धर्म मानते हैं। सिक्ख धर्म की जड़ गुरु नानक ने जमाई थी। नानक जी के बाद सिक्खों के नौ गुरु और हुए, गुरु गोविन्द सिंह जी दसवें गुरु थे और उन्होंने सिक्खों की बहुत उन्नति की।

नवें गुरु तेगबहादुर जी थे। गोविन्दसिंह इन्हीं के पुत्र थे। तेगबहादुरजी ने गुरुपद पाने के थोड़े ही दिन बाद आसाम प्रदेश की यात्रा की, उसी समय रास्ते में, बिहार प्रदेश के पटना नगर में गुरु गोविन्दसिंह जी का जन्म हुआ। बालक गोविन्द-सिंह कई बरस तक पटना में ही रहा। तेगबहादुर जी ने उसकी शिक्षा के लिए अच्छा बन्दोबस्त कर दिया था। गोविन्दसिंह को छुटपन से ही लड़ने-भिड़ने का, तीर-तलवार तथा भाला चलाने और घोड़े पर सवारी करने का बड़ा शौक़ था। देखने से मालूम होता था, कि यह बालक उमर पाने पर बड़ा बहादुर निकलेगा। इन बातों के साथ ही बालक गोविन्द की रुचि धर्म

पर भी थी। वह बड़े चाव से धर्म की बातें सुनता और प्रसन्नता से ईश्वर का ध्यान करता था। उसकी आदतें देख कर सिक्ख लोग आपस में कहते थे—भाई, जब यह बालक हमारा गुरु बनेगा, तब सच मानो, हमारी बड़ी उन्नति होगी।

अभी बालक गोविन्द की उमर मुश्किल से नौ-दस बरस की भी न होने पाई थी, कि सिक्खों पर दिल्ली के बादशाह औरङ्गजेब की नजर पड़ी। सिक्खों की कई बातों से नाराज होकर उन्होंने गुरु तेगबहादुरजी को पकड़वा लिया और दिल्ली में उनका सिर कटवा दिया। गुरु का सिर कट गया और सिक्ख टुकुर-टुकुर देखते रह गए।

बालक गोविन्दसिंह ने पिता की गद्दी पाई। वे अब सिक्खों के गुरु हो गए। गोविन्दसिंह जी कहने को तो बालक थे, पर उनकी बुद्धि बूढ़ों से भी बढ़ कर थी। पिता के इस प्रकार मारे जाने का उन्हें बड़ा रंज था। उन्होंने उसी समय इरादा कर लिया—सिक्ख जाति की हालत बिल्कुल गयी बीती हो रही है। जाति के लोगों में एका और प्रेम न होने से बल नहीं है। यदि सिक्खों में बल होता, तो क्या पिता जी इस प्रकार मारे जाते। सो अब मैं अपनी जाति को वीर और बलवान बनाऊँगा। लोगों में एका और प्रेम बढ़ाऊँगा। जब मेरी जाति बलवान् बन जायगी, तब वह आप ही मेरे पिता की मृत्यु का बदला वसूल कर लेगी।

उस समय सचमुच सिक्ख जाति की बड़ी दुर्दशा थी। उसमें सच्ची वीरता की बड़ी कमी थी। सिक्ख लोग गुरु के बड़े भक्त थे। पर आपस में एका और प्रेम न था, जिससे उनकी शक्ति बिखरी हुई थी। धर्म के नाम पर सिक्ख जाति झूठे ढकोसलों में फँसी थी। उसकी यह दशा देख देख गोविन्दसिंह जी मन ही मन दुखी होते थे। उन्होंने कुछ होश

सँभाला; तब जाति की दशा सुधारने का काम हाथ में लिया। यह देख सिक्ख लोग बहुत खुश हुए। झुंड के झुंड सिक्ख गुरु जी के पास आने लगे।

एक दिन गुरु जी अपने डेरे में बैठे-बैठे कुछ सोच रहे थे। एकाएक उन्हें एक बात सूझी। वे नंगी तलवार लेकर बाहर निकल पड़े और गरज कर सिक्खों से बोले—'देखो, अब तुम लोगों के सामने सच्ची काली माई आई है। बोलो, तुम में से कौन गुरुदेव के लिए, अपनी जाति के लिए; अपने देश के लिए और अपने धर्म के लिए अपना सिर देने को तैयार है।'

यह सुनते ही सिक्खों में सन्नाटा छा गया। सब के मुँह उतर गए, तन-बदन की सुध जाती रही। तब गुरुजी ने फिर वही सवाल किया। इस बार दयाराम क्षत्रिय उठा और हाथ जोड़कर बोला—"गुरु जी, मेरा सिर हाजिर है।" गुरु जी प्रसन्न होकर उसे अपने डेरे में ले गए। वहाँ उन्होंने पहले से ही सब बन्दोबस्त कर रखा था। उन्होंने दयाराम को तो एक तरफ बैठा दिया, और एक बकरे का सिर इतने जोर से काटा कि तलवार की आवाज बाहर तक सुनाई दी। इसके बाद गुरु जी खून से रँगी हुई तलवार लिए बाहर निकल आए और बोले—"देवी और बलिदान चाहती है। बोलो, अब कौन अपना सिर देगा?" अब की बार जाट वीर धर्मा अपना सिर देने के लिए तैयार हुआ। गुरु जी उसे भी डेरे में ले गये। उन्होंने उसे भी दयाराम के समान एक ओर बिठा, दूसरे बकरे का सिर काट दिया। लोगों को खटाके की आवाज सुनाई दी और इसी के बाद सब ने देखा कि डेरे से बाहर तक खून बह आया है। गुरु जी फिर तलवार लेकर बाहर आ पहुँचे और बोले—"अब कौन वीर अपना सिर देने को तैयार है?"

अब तो लोगों का धीरज जाता रहा। खलबली मच गई।

लोग 'हाय हाय' करने लगे। कोई तो यहाँ तक कहने लगे—'हाय ! आज न जाने क्या होने वाला है। गुरु जी जरूर पागल हो गये हैं। दो के प्राण तो ले चुके, अभी और न जाने कितनों के लेंगे। अब क्या करना चाहिए ?' तब कुछ बुद्धिमान् महाशय दौड़े-दौड़े गुरु जी की माता के पास पहुँचे और उन्हें सब हाल बता कर बोले—'शीघ्र ही हम लोगों की रक्षा कीजिए।' जब तक माता जी का सन्देश आये, तब तक यहाँ और तीन आदमी—हिम्मत कहार, सहेबा नाई और मोहकम दर्जी—डेरे के भीतर जा चुके थे और डेरे से ख़ून की धारा बहने लगी थी।

इधर सब लोगों की जान सूख रही थी, कि उधर डेरे से क्षण भर के बाद ही वे पाँचों वीर नये नये कपड़े पहने तथा हथियार से लैस बाहर निकले। उन्हें देखते ही सब लोग दङ्ग रह गए। गुरु जी ने सब से कहा—"देखो गुरु के लाड़ले हैं, ये सच्चे धर्मवीर हैं, मैं ऐसे ही गुरुभक्त शिष्य चाहता हूँ।" तब तो सब लोग पछता-पछता कर कहने लगे—'हाय ऐसा जानते तो हमी सब के पहले अपना सिर देने को तैयार हो जाते।' पर अब पछताने से क्या होता। इतने में ही गुरु जी ने फिर सब से पूछा—'क्या सब सिक्ख मेरे साथ हैं ?' उत्तर में सब लोगों ने जोर के 'सत श्री अकाल' की आवाज की जिससे गुरु जी बहुत प्रसन्न हुए।

इसके बाद गुरु गोविन्दसिंह जी ने एक बड़ा दरबार किया। उसमें सिक्खों की बड़ी भीड़ हुई। दूर-दूर के सिक्ख आए। गुरु जी सफेद कपड़े पहन कर गद्दी पर बैठे। उनके दाएँ-बाएँ वे पाँचों गुरुभक्त शिष्य भी बिठाए गए। गुरुजी ने उन पाँचों वीरों को आज्ञा दी कि सच्चे मन से परमात्मा के नाम पर तीन बार 'वाह गुरु ! वाह गुरु ! वाह गुरु !' कहो, उन्होंने फौरन

गुरु जी की आज्ञा का पालन किया। तब गुरु जी ने लोहे के कटोरे में शरबत तैयार किया उन्होंने बाएँ हाथ में कटोरा लिया और दाहिने हाथ से खाँड़े की नोक से वह शरबत घोल कर उन पाँचों वीरों को पिलाया। शरबत पीकर उन लोगों ने जोर-जोर से "वाह गुरुजी का खालसा" और "श्री वाह गुरु जी की फतेह" की आवाजें की। इसके बाद और भी खूब जलसा हुआ।

उसी दिन से वे पाँचों वीर आपस में जाति-पाँति का भेद भूल सच्चे भाई हो गए! उन्हें गुरुजी के दाएँ-बाएँ बैठने का अधिकार प्राप्त हुआ। गुरु जी के इस काम से सारी सिक्ख जाति आपस का भेद भूल एकता के धागे में बँध गई। सभी भाई-भाई हो गये। दिन-दिन उनमें प्रेम बढ़ने लगा। धीरे-धीरे सिक्खों की बढ़ी बढ़ती हुई शक्ति बहुत बढ़ गई। वह जाति भारत की बलवान् जातियों में गिनी जाने लगी। उसने अपने शत्रुओं को भी खूब छकाया।

---

(२७)

गुरु गोविन्दसिंह और महात्मा बुद्धूशाह

गुरु गोविन्दसिंह अधिकतर आनन्दपुर में रहा करते थे। उनके उपदेश सुन कर झुण्ड के झुण्ड सिक्ख उनके पास आने लगे। धीरे-धीरे गुरुजी के पास सिक्खों की एक अच्छी सेना जमा हो गई। उनका बल बढ़ता देख बिलासपुर का राजा भीमचन्द चौंका. क्योंकि आनन्दपुर उसी के राज्य में था। गुरुजी के पास परसादी नाम का एक सुन्दर हाथी था। एक दिन भीमचन्द ने गुरुजी के पास खबर भेजी कि वह हाथी मेरे पास भेज दो! गुरुजी ने साफ नाहीं कर दी। इससे भीम-

चन्द और भी चिढ़ गया और गुरुजी से बदला लेने की सोचने लगा।

इधर गुरुजी ने नाहन के राजा मेदिनीप्रकाश और श्रीनगर के राजा फतेहशाह से मित्रता कर ली। नाहन का राजा गुरुजी को बहुत चाहता था। उसने गुरुजी को अच्छी जागीर दी और उनके रहने के लिए एक अच्छा-सा किला बनवा दिया। गुरुजी दलबल समेत उसमें जाकर रहने लगे।

इसी बीच में महात्मा बुद्धूशाह से गुरुजी की मित्रता हो गई। बुद्धूशाह जी एक अच्छे मुसलमान फकीर थे। उनके और गुरुजी के विचार बहुत कुछ मिलते जुलते थे। इसलिए उनकी मित्रता दिन दिन बढ़ती गई। उधर दिल्ली में, बादशाह औरङ्गजेब ने नाराज होकर अपने यहाँ से ५० पठानों को निकाल दिया। बेचारों को कहीं सहारा न रहा। बेचारे दुखी होकर बुद्धूशाह जी के पास पहुँचे। तब बुद्धूशाह जी ने उनसे कहा—तुम घबड़ाओ नहीं, तुम्हारे लिए मैं कुछ बन्दोबस्त कर दूँगा। बुद्धूशाहजी गोविन्दसिंह जी से मिले। उन्होंने गुरुजी से उन पठानों का सब हाल सुनाया और उनसे कहा—"आप इन लोगों को अपनी सेना में नौकर रख लीजिए। बेचारों पर बड़ी दया होगी।" गुरुजी मुसलमानों से बहुत भड़कते थे, पर मित्र की बात न टाल सके! उन्होंने पठानों को अपने यहाँ नौकर रख लिया।

इसके कुछ दिन बाद श्रीनगर के राजा फतेहशाह की राजकुमारी का विवाह बिलासपुर के भीमचन्द के बेटे के साथ हुआ। फतेहशाह ने बड़े प्रेम से गुरुजी को नेवता दिया। पर, गुरुजी बड़े विचारवान् थे। उन्होंने सोचा—भीमचन्द से अपना ठहरा मन-मुटाव। क्या जाने, वह वहाँ झगड़ा कर बैठे, इसलिए बैठे बिठाए आफत को न्योता देना बुद्धिमानी नहीं। गुरुजी फतेहशाह के यहाँ न गए। पर, उन्होंने अपने दीवान

नन्दचन्द और पुरोहित दयाराम के हाथ लड़की को दहेज में देने के लिए सवा लाख का सामान भेज दिया। गुरुजी का भेजा हुआ सामान, सब राजाओं के भेजे हुए सामान से अधिक था। भीमचन्द गुरुजी से मन ही मन जलता था, उनका सामान देखते ही उसका क्रोध भड़क उठा। उसने फतेहशाह से कहा—'जब तक तुम गोविन्दसिंह से मित्रता न छोड़ दोगे और उसका सामान न लुटवा दोगे तब तक मैं तुम्हारी बेटी को विदा न कराऊँगा।' बेचारा फतेहशाह क्या करता, उसने लाचार होकर भीमचन्द की बात मान ली। फिर क्या था, गुरुजी का सामान लुटवा दिया गया। लूटमार के साथ कितने सिक्ख भी मारे गए। जो बचे, वे भाग कर गुरुजी के पास पहुँचे। उनसे सब हाल सुनकर गुरुजी बहुत नाराज़ हुए।

इधर भीमचन्द ने सोचा, कि सब हाल सुन गोविन्दसिंह जरूर कुछ गड़बड़ करेंगे, इसलिए उन्हें पहले से ही दबा लूँ, तो पीछे कोई खटका न रहेगा। यह इरादा करते ही उसने अपने अधीन तथा अपने मित्र राजाओं से सलाह की कि या तो गोविन्दसिंह मार डाले जायँ या पकड़ कर औरङ्गजेब के पास दिल्ली भेज दिये जायँ। सब राजाओं ने यह सलाह पसंद की। कोई २०-२२ पहाड़ी राजाओं की फौज इकट्ठी हुई। उसने बड़ी धूमधाम से गुरुजी पर चढ़ाई कर दी।

इधर गुरुजी की फौजें भी तैयार हो रही थीं। शत्रु के आने का हाल सुनते ही वे अपना दल ले उससे भिड़ने को चले, पर इसी बीच में एक बात हो गई। ५००-६०० डरपोक सिक्ख मैदान छोड़ कर भाग गए। गुरुजी ने बुद्धूशाहजी के कहने से जिन ५०० पठानों को नौकर रख लिया था, उनमें से भी ४०० आदमी बेइमानी कर गए। वे दुश्मनों से जा मिले। यह देख कर भीमचन्द की खुशी का ठिकाना न रहा।

पर इन बातों से गुरुजी ने हिम्मत न हारी। उन्होंने काले खाँ* को तो पाँवटे के किले की रक्षा का भार सौंपा और कृपालु सिंह तथा साँगोशाह को आगे रवाना किया। इन वीरों के साथ गुरुजी भी थे। वीर सिक्ख दुश्मन से भिड़ने के लिए मस्तानी चाल से जा रहे थे। भङ्गानी के मैदान में दोनों दलों की मुठभेड़ हुई। सेनापति साँगोशाह अपनी आधी सेना पीछे छोड़ और आधी साथ ले अगले मोर्चे पर जा डटे। खूब तेजी से तलवार चलने लगी। कुछ सिक्ख वीर झपाटे से तीरों की वर्षा करने लगे। शत्रुओं को कुछ थकता देख, सिक्ख वीर बड़ी तेजी से जोर-जोर से "वाह गुरु की फतेह" बोलते हुए उन पर पिल पड़े। शत्रु सिक्खों का यह हमला न रोक सका। उसके हजारों आदमी मारे गए। भीमचन्द के हाथ से मैदान जाता रहा। वह दुम दबा कर भाग गया।

भीमचंद के साले ने यह हाल देखा, तो उसे बड़ा जोश आया। वह उन बेईमान ४०० पठान और बहुत से राजपूतों को ले सिक्खों पर आ टूटा। तब इधर से दीवानचन्द ने उसका मुकाबला किया। नन्दचन्द और उनके साथियों ने इतनी तेजी से मार-पीट की कि शत्रुओं का बिछौना बिछ गया। इस बार भी शत्रु भाग खड़े हुए। आगे ठहर कर वे अपने आदमी सम्भालने लगे।

इधर महात्मा बुद्धूशाह जी ने उन पठानों की बेईमानी की खबर सुनी। आपको रञ्ज हुआ—काटो तो शरीर में खून नहीं। गुरुजी ने मेरे ही कहने से उन पापियों को अपने पास रख लिया था। ऐसे ही पापी और लोभी, मुसलमानों को बदनाम

*कालेखां उन सौ ईमानदार पठानों का सरदार था जिन्होंने रुपये के लोभ से अपना ईमान नहीं बेचा था।

करते हैं। गुरुजी क्या सोचते होंगे। उन पापियों ने यह बेई-मानी गुरुजी के साथ नहीं, मेरे साथ की है। यह सब सोचते-सोचते फकीर साहब को बड़ा क्रोध आय; उनकी आँखें अङ्गार के समान चमकने लगीं, भुजाएँ फड़कने लगीं। उन्होंने तलवार खींच ली। यह देख उनके घर के लोग घबड़ा उठे। पूछने पर आपने जवाब दिया—"बस, आज ऐसी तलवार चलाऊँ कि उन बेईमानों को छठी के दूध की याद आ जायगी। जिसे मेरा साथ देना हो, तैयार हो जाय।"

शाहसाहब आज युद्ध करने जायँगे—बिजली के समान यह खबर चारों ओर फैल गई। बात की बात में २००० हजार मुसलमान योद्धा शाहसाहब के झंडे के नीचे जमा हो गये। उनके साथ उनके दो भाई और चार बेटे भी हथियारों से लैस हो चलने के लिये तैयार हुये। इस प्रकार दलबल के साथ शाहसाहब मैदान में जा पहुँचे। उनका यह रङ्ग-ढङ्ग देख गुरु-जी और सिक्ख वीरों को बड़ा अचरज हुआ। पर शाहसाहब ने किसी से बात तक न की। उन्होंने बिजली की तेजी से झपटकर शत्रुओं पर हमला कर दिया। शाहसाहब क्रोध में भर रहे थे, उन्हें तन-बदन को होश न था। चक्र के समान उनकी तलवार घूम रही थी। जो सामने आता वही गाजर मूली के समान कट जाता था। दुश्मनों के हौसले पहले ही से ढीले हो रहे थे। शाहसाहब की मार से वे इतने घबड़ाये, कि अपने सैकड़ों आदमी कटवा कर इस तरह भागे कि फिर कर भी देखने का साहस न किया। शाहसाहब विजय पाकर सिक्ख दल में लौट आए। गुरु गोविन्दसिंह जी उनके गले से लिपट गए। पाँवटे में आनन्द के बाजे बजने लगे।

(२८)

गुरु गोविन्दसिंह और स्त्री जाति

गुरु गोविन्दसिंह जी जैसे बहादुर और साहसी थे, वैसे ही गुणवान् भी थे, उनमें दयालुता थी, उदारता थी। दूसरे को दुखी देख उनके उनके प्राण पसीज उठते थे। वे स्त्री जाति का तो बड़ा ही आदर करते थे, उसे माता के समान समझते थे।

एक दिन की बात सुनिए। गुरुजी अपने डेरे में बैठे हुए थे, कि एक ब्राह्मण उनके सामने आया और हाथ जोड़ कर उनसे बोला—"महाराज, मैं अपना विवाह करके अपनी पत्नी को घर ले जा रहा था। रास्ते में बासी के पठान सरदार जब्बारखाँ ने मुझ पर बड़ा अत्याचार किया। उसने जबरदस्ती मेरी पत्नी छीन ली और अब वह उसे अपने घर ले गया है। मैंने उससे कितनी ही प्रार्थना की, पर उसका कठोर हृदय न पसीजा। तब मैं आसपास के कितने ही बड़े-बड़े आदमियों और सरदारों के पास गया, पर उन्होंने, मेरी विनती सुनना तो दूर रहा, उल्टा मुझे दुत्कार दिया। सो महाराज, सब जगह से निराश हो अब आपकी शरण में आया हूँ। आशा है आप प्रार्थना पूरी करेंगे।"

ब्राह्मण की बातें सुनते ही गुरु महाराज के शरीर में मानों आग लग गई। मारे क्रोध के उनका खून उबलने लगा। मानों अँगारे के समान चमकने और भुजाएँ फड़कने लगीं। उन्होंने अपने प्यारे पुत्र अजीतसिंह को बुलाकर आज्ञा दी—'बेटा, इस ब्राह्मण के साथ जाओ और दुखिया ब्राह्मणी की रक्षा करो। उस पठान सरदार को हाथ-पैर बाँध कर मेरे सामने, लाओ।

यहाँ यह याद रखने की बात है, कि पहाड़ी हिन्दू राजा गुरुजी के खून के प्यासे हो रहे थे, गुरुजी और सिक्खों को सताने के लिए उन्होंने कोई कसर बाकी न रक्खी थी; ब्राह्मण भी उनसे शत्रुता रखते थे परंतु ऐसे मौके पर गुरुजी ने शत्रुता की ये बातें भुला दी। ब्राह्मणी की रक्षा करने के लिए उन्होंने अपने प्यारे पुत्र अजीतसिंह को शत्रु से लोहा लेने की आज्ञा दे दी। इस बात से पता चलता है कि गुरुजी का हृदय कितना महान् कितना उदार और कितना दयालु था, तथा वे स्त्री जाति का कितना आदर करते थे।

बहादुर अजित पिता की आज्ञा पा, दल-बल से उस अत्याचारी पठान सरदार पर चढ़ दौड़ा। अभी सूरज भी निकलने न पाया था, लोगों ने बिछौना भी न छोड़ा था कि अजित ने सरदार पर धावा बोल दिया। सरदार के देवता कूच कर गए। जब तक वह तैयार होवे और उसके आदमी आवें, तब तक अजित उसकी छाती पर जा चढ़ा। उसने चटपट सरदार की मुश्कें बाँध लीं। अपने सरदार को कैद होता देख, उसके आदमी जहाँ-तहाँ भाग चले। इसके बाद अजित ने उन लोगों को भी पकड़वा लिया, जिन्होंने उस दुष्ट और घृणित काम में सरदार की सहायता की थी। अजित ने उन लोगों को फौरन तलवार के घाट उतार दिया।

इसके बाद अजित खुशी-खुशी पिता के पास लौट आया। कैदी जब्बारखाँ गुरुजी के सामने लाया गया। सब हाल सुन कर गुरुजी ने सोचा कि ऐसा पापी जितनी जल्दी दुनिया से दूर कर दिया जाय, उतना ही अच्छा। बस, उन्होंने आज्ञा दी कि दुष्ट जब्बार को फाँसी का फन्दा पहना दिया जाय।

ब्राह्मण अपनी स्त्री के साथ प्रसन्न होता हुआ अपने घर चला गया।

---

(२६)

धर्म के लिए जीवन-दान

गुरुजी से पहाड़ी राजाओं की खटपट बढ़ती ही गई। पहाड़ी राजा जोर तो बहुत लगाते थे, पर उनके भाग्य में हार ही बदी थी। जब उन्होंने देखा कि हमारी जीत होती नहीं और उधर दिन-दिन गुरु गोविंदसिंह जी का बल बढ़ता जाता है तब उन्होंने दिल्ली के बादशाह औरंगजेब से सहायता माँगी। बादशाह तो यह चाहते ही थे कि जैसे बने, वैसे सिक्खों का जोर घटा दिया जाय। उन्होंने फौरन लाहौर और सरहिंद के सूबेदारों को हुक्म दिया कि आनन्दपुर को घेर कर धूल में मिला दो और गोविन्दसिंह को कैद कर दरबार में भेज दो।

बादशाह का हुक्म पाते ही लाहौर और सरहिन्द के सूबेदार अपनी-अपनी सेनाएँ तैयार कर आनन्दपुर की ओर चले। पहाड़ी राजा भी अपनी-अपनी सेनाएँ लेकर उनसे आ मिले। इस प्रकार एक लाख से भी अधिक सेना इकट्ठी हो गई। इस दलबल ने बड़ी धूमधाम से आनन्दपुर पर घेरा डाल दिया। इस चढ़ाई की खबर सुनकर दल के दल सिक्ख आनन्दपुर में आने लगे। गुरुजी के पास कोई १२००० की फौज इकट्ठी हो गई। परन्तु इतनी सेना, उतनी बड़ी सेना से खुल्मखुल्ला लोहा न ले सकती थी इसलिए सिक्खों ने आपस में सलाह कर ली कि हम मौके-मौके शत्रुओं की हानि करेंगे। इधर सूबेदारों ने राजाओं से यह सलाह की कि इस आनन्दपुर को घेरे मजे से पड़े रहो। जब सिक्खों के पास खाने को न बचेगा, तब वे खुद हमारे सामने हाथ बाँधकर आ खड़े होंगे।

अन्त में सूबेदारों की चाल चल गई। सिक्ख लोग दाने-दाने को तरसने लगे। बहुत से भूखे सिक्ख गुरुजी की माता

गूजरी के पास पहुँचे और रो-रो कर उन्हें अपना दुखड़ा सुनाने लगे। उनका दुःख देख गूजरी ने गोविन्दसिंह को किला खाली करने की आज्ञा दी। पर गुरुजी किला नहीं छोड़ना चाहते थे। उन्होंने सबसे कहा—"जैसे तुम लोगों ने इतना दुःख सहा है। वैसे ही थोड़ा और सहो। शत्रु घेरा डाले डाले खुद ही घबड़ा उठे हैं, वे खुद ही दस-पाँच दिन में अपना-सा मुँह लेकर चले जायँगे और अन्त में जीत अपनी ही होगी।" पर, पेट की मार के सामने कौन ठहर सकता है? सिक्खों को गुरुजी की बातों पर भरोसा न हुआ। इधर शत्रुओं ने भी गुरु जी के पास खबर भेजी कि यदि आप किला खाली कर चले जायँ तो हम आप से जरा भी न बोलेंगे। बस, किले भर में हल-चल मच गयी। जिससे जो लेते बना, लेकर किला छोड़ने की तैयारी करने लगा। स्त्रियाँ रथों और गाड़ियों में सवार हुईं। सिक्ख लोग उनके आगे पीछे और दायें बायें होकर किले से बाहर निकले। इस समय गोविन्दसिंह जी को जो दुःख हो रहा था, उसे वे ही जानते थे। ज्यों ही सिक्ख लोग किले से बाहर निकल चुके, त्योंही शत्रुओं ने उन पर हमला कर दिया। सिक्ख भी बड़ी वीरता से उनसे लोहा लेने लगे। बहुत से सिक्ख मारे गये और बहुत से घायल हुए, बाकी प्राण लेकर भाग निकले। गुजरी ने एक गुफा में छिपकर प्राण बचाये। उस समय उनके साथ गोविन्दसिंह जी के दो पुत्र जोरावरसिंह और फतेहसिंह भी थे।

गूजरी के साथ गङ्गाराम नाम का एक ब्राह्मण भी था। वह बहुत दिन से गुरुजी के यहाँ रहता था। गुरुजी के घर के लोग उस पर बहुत विश्वास करते थे। वह खेरा नामक गाँव का रहने वाला था। उसने माँ गूजरी से कहा—"माँ, जब तक गुरुजी का पता नहीं मिलता, तब तक मेरे गाँव में चलो।

वहाँ तुम्हारी और इन बच्चों की रक्षा भली भाँति हो सकेगी। माता जी ने प्रसन्न होकर गङ्गाराम की बात मान ली और वे बच्चों को लेकर उसके साथ खेरी गाँव को चली गईं।

गूजरी के पास बहुत-सी अशर्फियाँ और बहुत से कीमती रत्न थे। उन्होंने वह धन रक्षा के लिए गंगाराम को सौंप दिया। उन्हें उस समय बड़ा दुःख और रंज था। धन और बच्चों की चिन्ता के मारे उन्हें चैन न पड़ती थी। रात को क्षण भर के लिए भी उनकी आँखों में झपकी न आई।

इधर धन के ढेर को देखकर ब्राह्मण देवता की नियत बिगड़ गयी। वह पापी गुरुजी के किये हुए उपकारों को क्षण भर में भूल गया। सवेरा हुआ और उसने चोरी का हल्ला मचाना शुरू कर दिया। माताजी को पल-पल पर शत्रुओं का डर लगा रहता था। उन्होंने गंगाराम की यह करतूत देखकर उससे कहा—'बेटा, तुम हमारे घर के आदमी हो, मैं रात भर सोई नहीं, यदि कोई चोर आता, तो मुझे जरूर मालूम हो जाता। तुम खुशी से धन रख लो, मुझे धन की रत्ती भर चिन्ता नहीं और न अपने प्राणों की है। चिन्ता है तो इन नन्हें-नन्हें बच्चों की। इसलिए हल्ला न मचाओ, कहीं कोई मुसलमान सुन लेगा, तो ये बेकसूर बच्चे मुफ्त में मारे जायँगे। बेटा, हल्ला न करो, तुम्हारे पैर पड़ती हूँ।'

अपनी पोल खुलते देख ब्राह्मण देवता और भी बिगड़े। हाय रे जमाने! मैंने इन लोगों के साथ प्राण सङ्कट में डाले इनके प्राण बचाए, घर में शरण दी और तन मन से इनकी सेवा की। उसके बदले में मुझे चोरी का इलजाम लगाया जाता है। हे भगवान! ऐसे दुष्टों को भी तुम सजा नहीं देते।' पुरोहित जी ने सोचा, अब यदि इन लोगों को शत्रु के हाथ में सौंप दूँ, तो मेरी बेईमानी पर परदा पड़ा रहेगा। इसलिए

उसने सरहिन्द से सूबेदार वजीरखाँ को इन लोगों के अपने यहाँ रहने की खबर दे दी।

वजीरखाँ के सिपाही बुढ़िया समेत उन बच्चों को पकड़ कर सरहिन्द ले गये। वजीरखाँ ने उन पाँच-छः बरस के नन्हें-नन्हें बच्चों पर प्यार कर उनसे कहा—"बच्चो तुम लोग मुझे बड़े प्यारे लगते हो, इसलिए मुसलमान हो जाओ। मैं तुम्हें बड़े प्यार से अपने पास रखूँगा और तुम्हें सब तरह का सुख पहुँचाऊँगा।"

बच्चों ने जवाब दिया—"हम अपने ही धर्म पर प्यार करते हैं। हम मुसलमान नहीं हो सकते।"

तब तो वजीरखाँ ने उन्हें बहुत ही फुसलाया, पर बालक न माने। वे बार-बार यही कहते रहे—"हमें अपना ही धर्म प्यारा है। हम दूसरे धर्म को प्यार न करेंगे।" जब वजीरखाँ ने देखा कि ये लड़के यों न मानेंगे, तब वह उन्हें डराने-धमकाने लगा। अन्त में उसने बच्चों से कहा—'यदि तुम मेरा कहना न मानोगे, तो तुम्हारे सिर काट लिए जायँगे।' बच्चों ने जवाब दिया—"अच्छी बात है। हमें मौत ही प्यारी है।"

अब तो बेचारे नादान बच्चे बहुत ही सताये जाने लगे। जब इतने पर भी बच्चों ने अपनी टेक न छोड़ी, तब सूबेदार ने हुक्म दिया कि ये दुष्ट बच्चे जीते जी दीवाल में चुन दिये जायँ। फौरन सूबेदार के हुक्म की तामीली की गई। कारीगर धड़ा-धड़ उन बच्चों को दीवाल में चुनने लगे। जब दीवाल उनके गले तक पहुँच गई, तब सूबेदार ने फिर उनसे कहा—"नादान बच्चो! अब भी मेरा कहना मान लो। अब भी मुसलमान हो जाओ। तुम्हारे प्राण बच जायँगे और तुम्हें सब तरह से सुख दिये जायँगे।

इस पर जोरावरसिंह ने जवाब दिया—"यह कभी नहीं हो

सकता। हम गुरु गोविन्दसिंह जी के पुत्र हैं। मौत से नहीं डरते।" छोटे भाई फतेहसिंह ने कहा—"हम तेरे लालच पर लात मारते हैं। हम अपना सिर देंगे, पर धर्म न देंगे, न देंगे तू अपना काम पूरा कर। हम मरने को तैयार हैं।"

जहाँ दरबार में कुछ लोग ऐसे थे, जो उन बच्चों का नाश होना देखने के लिए उतावले हो रहे थे, वहाँ कुछ लोग ऐसे भी थे जिन्हें वजीरखाँ के इस काम से घृणा हो रही थी। अन्त में मलेर-कोटला के सूबेदार ने वजीरखाँ से कहा—"जनाब, आप इन बच्चों को नाहक ही मारते हैं। ये नादान हैं, कुछ समझते नहीं, उन्हें मारने से आपको सिवा बदनामी के कुछ हासिल न होगा। इन्हें छोड़ दीजिए। खुदा के नाम पर रहम कीजिए।"

मलेर-कोटला के हाकिम की बातें सुन कर वजीरखाँ का एक हिन्दू मुसाहब सुचासिंह खत्री बोला—"हुजूर, ऐसा हरगिज़ न कीजिए। ये साँप के बच्चे हैं। आप आज इन्हें छोड़ देंगे, कल ही ये हम लोगों को डँसेंगे। मैं हिन्दुओं की ओर से बिनती करता हूँ, आप इन्हें हरगिज न छोड़िए।" फिर क्या था; वजीरखां ने घातक को हुकम दिया कि फौरन इन बच्चों के सिर उड़ा दो।

घातक बड़ी देर से आज्ञा पाने की राह देख रहा था। आज्ञा मिलते ही उसने तलवार सम्भाली। दूसरे ही क्षण बच्चों के सिर खट से धरती पर जा गिरे। यह राक्षसी काम देख कितने ही सज्जनों की आँखें भर आईं और वे मन ही मन वजीरखाँ और सुचासिंह को धिक्कारने लगे। नगर में जिसने यह खबर सुनी उसी को रञ्ज हुआ। हवा ने उड़ते-उड़ते यह समाचार बुढ़िया गुजरी के कानों में जा कहा। गूजरी को जो दुःख हुआ उसका बयान नहीं हो सकता। वे सोचने लगीं—गोविन्द किसा नहीं

छोड़ना चाहता था। मेरी जिद से उसे किला छोड़ना पड़ा और सिक्खों पर यह मुसीबत आई, तथा इन बच्चों के प्राण इस प्रकार गए, अब मैं बेटे को क्या मुँह दिखाऊँगी। इससे तो मर जाना बेहतर है। यह सब सोचते-साचते गजूरी ने खिड़की से कूद कर प्राण त्याग दिये।

(३०)

अजीत और जुझार की बहादुरी

हम यह पहले ही लिख चुके हैं कि सिक्खों के आनंदपुर के किले से निकलते ही शत्रुओं ने उन पर हमला कर दिया। यद्यपि सिक्ख उनसे जी खोलकर लड़े। अन्त में उन्हें भागना पड़ा। गुरु गोविन्दसिंह जी के साथ उनके दो पुत्र अजितसिंह और जुझारसिंह भी थे। रास्ते में सिरसा नदी पड़ी। गुरुजी ने उसमें अपना घोड़ा डाल दिया। उनके पुत्रों ने भी वैसा ही किया। सब लोग कुशलपूर्वक नदी पार कर गये।

अब गुरुजी रोपर नामक स्थान की ओर चले। उनके साथ लगभग ७०-८० सिक्ख भी थे। रास्ते में रोपर के पठानों ने उन पर हमला किया। सिक्ख भी जी खोलकर उनसे लोहा लेने लगे। पठानों की जो हानि हुई सो तो हुई ही, पर गुरुजी के भी ३० ४० आदमी मारे गये। उस समय गुरुजी के लिए यह बहुत बड़ी हानि थी। सिक्ख वहाँ से भी आगे बढ़े। रास्ते में गरीब-सिंह नाम के एक किसान ने गुरुजी को बड़े आदर से एक अच्छी जगह में ठहराया। वह जगह सब प्रकार से लड़ाई में काम देने लायक थी। उसके चारों ओर खाई खुदी हुई थी और भीतर की ओर मिट्टी की दीवालें उठी थीं। गुरुजी को यह स्थान बहुत पसन्द आया। वे उसमें आनन्द से ठहरकर आराम करने लगे।

अभी इन लोगों को यहाँ ठहरे एक दिन भी न हुआ था

और हथियार साफ भी न हो पाये थे कि शत्रु आ पहुँचे। शत्रुओं की संख्या थी अधिक और सिक्ख ठहरे थोड़े। पर सिक्ख डरने वाले नहीं थे। उन्हें लड़ने के लिए जगह भी अच्छी मिल गई थी। बस, वे भी अपनी अपनी तलवारें सँभाल कर गरजने लगे। देखते ही देखते लड़ाई ठन गई। पर केवल ४० ५० सिक्ख कहाँ तक जोर मारते शत्रु की बड़ी हानि हुई, पर उसने पीछे हटने का नाम न लिया। इधर सिक्खों के पास भागने के सिवा दूसरा उपाय न रहा।

अपने दल की यह दशा देख, वीर कुमार अजितसिंह को बड़ा जोश आया। वह पिता गोविंदसिंह के पास पहुँचा और हाथ जोड़कर बोला—"पिताजी, लड़ाई की हालत तो आप देख ही रहे हैं। कायरों के समान प्राण लेकर भाग जाना मैं अनुचित समझता हूँ, और शत्रु का कैदी बनकर, आबरू बरबाद कर जीने से तो मर जाना ही लाख दर्जे अच्छा है। जो पैदा हुआ है उसे एक दिन मरना जरूर है, तब वीरतापूर्वक लड़कर ही क्यों न मरूँ। इसलिए आप मुझे आज्ञा दीजिये, मैं युद्ध करने जाऊँ, और वीरतापूर्वक लड़ते लड़ते मृत्यु से मिलने का उपाय करूँ।

बेटे की ऐसी वीरता भरी बातें सुनकर मारे खुशी के गुरुजी की छाती सवा हाथ फूल उठी। उसने अजित को उत्तर दिया—"शाबाश बेटा! तुम्हारी बातों ने आज मुझे बहुत सुखी किया। सच्चे वीरों का यही धर्म है। जाओ, खुशी से जाओ, और अपने देश तथा धर्म के लिए शत्रुओं से लोहा लो। वीर-मृत्यु ही आत्मा के लिए स्वर्ग का द्वार खोल देती है। मेरा आशीर्वाद तुम्हें स्वर्ग में ले जायगा। जाओ! देर न करो।"

बहादुर अजित पिता की आज्ञा पा आठ-दस वीर सिक्खों को साथ ले मैदान की ओर चला। इस समय अजित केवल सोलह बरस का बालक था। बहादुरों के इस छोटे से दल को

देख शत्रु हँसने लगे। पर देखते ही देखते वह छोटा-सा दल उन बेहिसाब शत्रुओं पर टूट पड़ा। इस समय अजित की बहादुरी देखते ही बनती थी। वह जिधर को झुक पड़ा, उधर ही शत्रुओं की कतार काई की समान फट पड़ी। उसकी बहादुरी देख सभी दङ्ग रह गये। मित्रों की बात ही क्या शत्रु भी 'वाह वाह' करने लगे। वीर बालक अजित के हाथ में शत्रुओं का नाश करने वाली तलवार थी और जबान पर परमात्मा का पवित्र नाम। अजित की वह बहादुरी देख शत्रुओं के सेनापति तथा सरहिन्द के सूबेदार वजीरखाँ ने अपने कुछ वीरों को हुक्म दिया कि इस बहादुर बच्चे और इसके साथियों के साथ बन्दूक से नहीं, किन्तु तलवार लेकर लड़ो और बन सके, तो इसे जीवित ही पकड़ लो। परन्तु उस नाचती हुई मृत्यु के सामने जाने की किसी ने हिम्मत न की। अन्त में वही हुआ, जो होना चाहिए था। पानी के उस भारी धारा को चीरती-फारती नमक की वह छोटी डली, पानी में ही समा गई। शत्रु सेना को पके खेत की तरह काटती हुई अजित की वह टोली स्वर्ग को चली गई। भारत के इतिहास में अजित का नाम अमर हो गया।

बात की बात में यह खबर गुरुजी के दल में जा पहुँची। उसे सुन कर अजित के छोटे भाई, चौदह बरस के वीर बालक जुझारसिंह से न रहा गया। वह भी हाथ जोड़, मारे जोश के पिता के सामने जा पहुँचा और बोला—"पिता जी! बड़े भैया तो स्वर्ग चले गये, पर, मैं क्या इसी दुनिया में रह जाऊँगा? मुझे भी स्वर्ग जाने की आज्ञा दीजिये।"

गुरुजी ने प्रसन्न होकर जवाब दिया—"नहीं बेटा, तुम यहाँ न रहने पाओगे। अपने भैया के साथ स्वर्ग में ही रहोगे। मैं खुशी से तुम्हें स्वर्ग जाने की आज्ञा देता हूँ।' इसके बाद वीर पिता ने अपने हाथों अपने वीर बालक को लड़ाई की पोशाक

से सजा दिया और उससे कहा— "बेटा, जाओ, देश और धर्म के लिए अपना जीवन दान करो। अपने कुल का नाम बढ़ाने के लिये स्वर्ग का फाटक खोल दो।"

इस समय जुझारसिंह की चाल ढाल, सुन्दर शोभा और दमकता हुआ मुखड़ा देखते ही बनता था। उसके साथ भी आठ-दस वीर सिक्ख तैयार हुए। जुझारसिंह ने चलते-चलते अपने एक साथी से कहा—"भाई, एक प्याला पानी और पिला दो।" यह सुनते ही गुरु गोविन्दसिंह जी ने उससे कहा—"बेटा, स्वर्ग के द्वार पर देवता लोग तुम्हारे लिए अमृत का प्याला लिये खड़े हैं। इसलिए यहाँ देर करने का क्या काम? जल्दी जाओ और अपने बड़े भैया के साथ देवताओं के हाथ से अमृत का प्याला पिओ।"

पिता के मुँह से ऐसी बात सुन, बहादुर जुझारसिंह ने फिर पीछे मुड़ कर न देखा। पलक मारते सीधा मैदान में शेर के समान जा कूदा और जोर-जोर से शत्रुओं को ललकारने लगा। इधर जब तक शत्रु आगे बढ़े, तब तक उधर बालक जुझार उन पर इस प्रकार टूट पड़ा, जैसे सिंह हाथियों के दल पर पिल पड़ता है! जब तक शत्रु अपने हथियार सम्भालें सम्भालें, तब तक जुझार ने उनके कितने ही आदमियों को हमेशा के लिए धरती पर सुला दिया। अब क्या था, बहादुर जुझार कभी शत्रुओं की कतारों को चीरता हुआ इस ओर से उस ओर को निकल जाता था, और कभी उस ओर से इस ओर को चला आता था। ऐसा जान पड़ता था मानों वीर बालक जुझार शत्रुओं की उस भरी नदी को बराबर तैरकर पार करता और खुशी मनाता हो। जुझार का पहाड़ी घोड़ा भी गजब ढा रहा था। वह बिजली के समान चपल था—पलक

मारते अपने स्वामी को उस ओर ले जाता और उसकी इच्छा जानते ही इस ओर ले आता।

शत्रु बड़े अचरज और निराशा से जुझार की उस छोटी-सी तलवार का तमाशा देख रहे थे। जब वह तलवार घुमाता तब चारों ओर 'वाह वाह' की आवाजें उठने लगती थीं। कितने ही शत्रु तो यहाँ तक सोचते थे—अहा! यह वीर बालक लड़ाई में न मारा जाता और फूलता-फलता तो अच्छा होता!

अन्त में लड़ते-लड़ते जुझारसिंह हार गया। प्यास, थकाट और घावों के कारण वह भूमि पर गिर गया। देखते ही देखते उसकी आँखें सदा के लिए बन्द हो गईं। उसकी पवित्र आत्मा स्वर्ग में अजित की आत्मा से जा मिली।

यद्यपि अजित और जुझार थोड़ी उमर में स्वर्गवासी हो गये; पर उनके स्वदेश और धर्म-प्रेम के कारण सदा उनका नाम बना रहेगा। लोग आदर और प्रेम से उनकी कहानी कहते-सुनते रहेंगे।

---

(२१)

गुरु गोविन्दसिंहजी और ईमानदार रुहेले पठान

गुरुजी के सामने ही बहादुर साथी स्वर्गवासी हो गये कितने ही बहादुर साथी सदा के लिए रणभूमि पर सो गये, फिर भी वे उदास नहीं हुए। उनका उत्साह पहले से भी दूना हो गया। वे उसी प्रकार तेजी से शत्रुओं पर बाण बरसाते रहे। धीरे-धीरे सूर्य डूब गया, अँधेरा की चादर ने चारों ओर से संसार को ढँक दिया। शत्रुओं ने सोचा—थोड़े से साथियों के

साथ अब गोविन्दसिंह कहाँ जा सकते हैं। हम लोग सबेरा होते ही या तो उन्हें पकड़ लेंगे, या मार डालेंगे।

शत्रुओं के इस इरादे से सिक्खों को अच्छा मौका मिल गया। कुछ सिक्ख गुरुजी से बोले—"इस समय आपके प्राण संकट में हैं और सिक्खों तथा देश को आपकी घड़ी-घड़ी जरूरत है। आप रहेंगे तो फिर भी हम लोगों के दिन फिरने की आशा है, इसलिए आप दो-चार आदमियों को साथ ले रातो-रात यहाँ से निकल जाइये। हम लोग प्राणों की बाजी लगाकर इस स्थान की रक्षा करेंगे।" गुरुजी को भी यह सलाह पसन्द आई और तीन आदमियों को साथ ले वहाँ से निकल पड़े।

इधर शत्रुओं को उनके भागने की आहट मिल गयी। फौरन पहरेवालों ने बिगुल बजाया। बहुत से शत्रु हथियार ले लेकर गोविन्दसिंह जी को पकड़ने के लिए दौड़ पड़े। अँधेरा था ही, इस भागाभाग में शत्रु तितर-बितर हो गये और उधर गुरुजी भी अपने साथियों से बिछुड़ गये। लेकिन, गुरुजी पर किसी की नजर न पड़ी, वे साफ निकल गये। झाड़ियों में उलझ कर बड़ा कष्ट उठाना पड़ा, पैरों में काँटे छिद गये। रास्ते में उनके कपड़े चिन्थी-चिन्थी हो गये, शरीर जहाँ तहाँ छिल गया, भूख प्यास ने अलग सताया। इस प्रकार दुःख सहते सहते दो दिन बाद वे माछूवाड़ा नामक गाँव में जा पहुँचे।

गाँव के पास ही एक बगीचा था। गुरुजी ने उसी में डेरा जमाया। थोड़ी देर बाद उनके तीनों साथी ढूँढ़ते ढूँढ़ते अचानक वहीं आ पहुँचे। गुरु के दर्शन करते ही उनके आनन्द की सीमा न रही, उन लोगों ने गुरुजी के पैरों के काँटे निकाले और कपड़े भी ठीकठाक किये। फिर वे उन्हें कुएँ पर ले गये और उनको मल-मल कर स्नान कराया। गुरुजी की सारी

थकावट जाती रही। उनका मुखड़ा फिर पहले की नाईं चमकने लगा।

इस बगीचे के मालिक गुनीखाँ और नबीखाँ नाम के दो रूहेले पठान थे। ये लोग घोड़े खरीदने तथा बेंचने का रोजगार करते थे। गुरुजी ने भी उन लोगों से कई बार घोड़े खरीदे थे; जिससे उन्हें अच्छा लाभ हुआ था। इस लेन-देन से आपस में अच्छा प्रेम हो गया था। वे पठान गुरुजी को बहुत चाहते थे। गुरुजी के आने की खबर सुनते ही वे चटपट बगीचे में दौड़े आये। गुरुजी की यह दशा देख उन्हें बड़ा रंज हुआ। उनकी आँखों में आँसू भर आये। उन्होंने ईश्वर की शपथ खाकर गुरुजी से कहा—"महाराज, हम लोग तन, मन, धन से आपकी सेवा करेंगे और जरूरत पड़ेगी, तो आपके लिए हँसते-हँसते प्राण भी दे डालेंगे। आप बेखटके रहिये।" उनके इस व्यवहार से गुरुजी बहुत प्रसन्न हुये और उन्होंने पठानों को प्रेम से अशीर्वाद दिया।

गुरुजी के आने की खबर सुनते ही दो एक सिक्ख और आ गये। वे उनके लिये भोजन भी लेते आये थे। गुरुजी ने अपने साथियों के साथ आनंद से भोजन किया और आराम करने लगे।

गुरु महाराज अभी अच्छी तरह आराम भी न करने पाये थे, कि उन्हें ढूँढते हुए शत्रु वहाँ आ पहुँचे! उन्होंने चारों ओर से गाँव घेर लिया और गुरुजी को ढूँढ़ने लगे। यह बात रुहेले भाइयों को भी मालूम हुई। वे गुरुजी की रक्षा करने के लिए उतावले हो उठे। अभी शत्रुओं को गुरुजी का पता भी न चला था कि रुहेले भाई गुरुजी की रक्षा करने के लिए आ पहुँचे। उन्होंने चटपट गुरुजी को नीले कपड़े पहना कर उनका भेष बदल दिया। गुरुजी खासे मुसलमान जान पड़ने लगे। तब रुहेले भाई उन्हें साथ लेकर गाँव से बाहर

निकल गये। मुसलमान सिपाही उनको मुसलमान जान कुछ न बोले। तीनों सज्जन चलते-चलते आठ-दस कोस निकल गये। तीसरे दिन ये सब ऐसी जगह जा पहुँचे, जहाँ दुश्मनों का कुछ भी खटका न था। गुरुजी बहुत प्रसन्न हुए और रुहेले भाइयों को बार बार आशीर्वाद देने लगे। तब रुहेले भाई अपने गाँव को लौट आये। इस सेवा के बदले गुरुजी ने उन भाइयों को अपने शिष्यों के नाम एक पत्र दिया, जिसमें लिखा था कि इन सज्जनों ने अपने प्राण संकट में डालकर भी हमारी रक्षा की है। इसलिए सब लोग हृदय से इनका आदर करें और समय पड़ने पर इनकी सेवा करने में पैर पीछे न हटावें। इसके बाद गुरुजी आगे चले गये और फिर से अपना बल बढ़ाने के उपाय करने लगे।

---

(३२)

भीम का त्याग

राजपूताने में मेवाड़ नाम का राज्य है। पहले तो उसकी राजधानी चित्तौर थी, पर आजकल उदयपुर है। बहुत पहले वहाँ राणा राजसिंह राज्य करते थे। उनके भीमसिंह और जयसिंह नाम के दो लड़के थे। यह लड़के एक साथ जोड़वाँ पैदा हुए थे। भीमसिंह पहले हुआ था, जयसिंह थोड़ी देर बाद।

राजगद्दी बहुधा बड़े लड़के को दी जाती है। भीम बड़ा था, इसलिए नियम के अनुसार गद्दी का अधिकारी भी वही था। लोग भी ऐसा ही समझते थे। परन्तु राणा जयसिंह को अधिक चाहते और उन्हें ही गद्दी देने का भी विचार रखते

थे। एक दिन महारानी को राणा का विचार मालूम हो गया। बेचारी बड़ी चिन्ता में पड़ गई। लड़के तो उन्हीं के थे, वे दोनों को ही चाहती थीं, पर यह भी चाहती थीं कि बड़े बेटे का अधिकार न मारा जावे, क्योंकि राज्य न मिलने पर वह जरूर गड़बड़ करेगा, जिससे देश की बड़ी हानि होगी। एक दिन मौका पाकर उन्होंने राणा से विनती की—"महाराज! आप जयसिंह को राज्य का अधिकारी बनाने का विचार कर रहे हैं—यह ठीक नहीं। यह तो सरासर भीम के साथ अन्याय करना है। भीम बड़ा है, राज्य का अधिकारी भी वही है। हमारे पूर्वजों से यही नियम चला आया है कि बड़ा बेटा ही राज्य का अधिकारी होता है। इसलिए गद्दी भीम को ही मिलनी चाहिये।"

राणा ने महारानी की बात मान ली। उन्होंने अपना विचार बदल दिया। उन्होंने दूसरे दिन भीम को अपने पास बुलाया। भीम को पिता का इरादा मालूम था। वह गुस्से में भरा हुआ पिता के पास आया। उसने आकर देखा कि पिता का चेहरा उतर गया है, उन पर चिन्ता छा रही है और वे बड़े ही प्रेम से मेरी ओर देख रहे हैं। यह देखते ही भीम का क्रोध उतर गया। उसने झुक कर पिता को प्रणाम किया और पूछा—"पिताजी! मुझे क्या आज्ञा होती है?" राणा ने प्यार से भीम को अपने पास बिठा लिया।

पिता का यह रङ्ग-ढङ्ग देख भीम को अचरज हुआ। उसने फिर राणा से कहा—"पिता जी, आपको किस बात की चिन्ता हो रही है? आपने मुझे किस लिए बुलाया है। आज्ञा दीजिये मैं सेवा के लिए तैयार हूँ।"

राणा ने उससे कहा—"बेटा, मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया है। जो होना था, वह तो हो ही चुका। अब

उन बातों को भूल जाओ। तुम मेरे बेटा हो, मैं तुम्हीं को राजा बनाऊँगा। अब किसी प्रकार का सोच न करो, पर चिन्ता की बात है तो यही कि जयसिंह अब तक यही समझता आ रहा है कि राजा मैं ही बनूँगा। अब राज्य न मिलने से वह निराश होगा और बिना गड़-बड़ किये न रहेगा। अपने साथियों को लेकर वह झगड़ा फसाद करेगा। राज्य की बड़ी हानि होगी, मुफ्त में हजारों आदमी मारे जावेंगे। सो तुम एक काम करो, यह मेरी तलवार ले जाओ और चुपके से जयसिंह का काम तमाम कर दो! बस किसी प्रकार का खटका न रहेगा। एक जान जायगी, पर हजारों का खून तो न होगा।

भीम ने पिता की ये बातें सुनीं, तो सन्नाटे में आ गया। मन ही मन सोचने लगा—"पिता जी क्या कह रहे हैं, आज इन्हें हो क्या गया है? कहीं मेरी परीक्षा तो नहीं लेना चाहते? मै यह काम न करूँगा, जिससे मेरे नाम में धब्बा लगे। भाई के खून से रङ्गा हुआ सिंहासन मुझे न चाहिए। गरीब ही बना रहूँगा और क्या? पीछे कोई नाम तो न धरेगा।

भीम को चुप देख राणा ने फिर उससे कहा—"बेटा क्या सोचते हो? वह काम करने में कोई बुराई नहीं है, तुम न्याय के लिए—देश की भलाई के लिए यह काम करोगे। इसमें मेरा ही कुसूर है, तुम बेकुसूर हो। जाओ, अधिक सोच-विचार करने की जरूरत नहीं। तलवार लो, फौरन जयसिंह का काम तमाम कर दो। खटके की कोई बात नहीं है, मैं आज्ञा दे रहा हूँ।"

भीम की आँखें डबडबा आईं। उसने तलवार पिता के पैरों पर रख दी और हाथ जोड़ कर जवाब दिया—"पिताजी आपने मेरे साथ जो अन्याय किया था, उसका बदला मुझे मिल गया। आपने गद्दी मुझे दे दी है, मैं गद्दी का मालिक हो

चुका। पर मैं अब अपनी खुशी से जयसिंह को गद्दी देता हूँ। आपके सामने प्रण करता हूँ कि मैं गद्दी के लिए कभी भाई से झगड़ा न करूँगा और न राज्य पाने का ख्याल ही मन में लाऊँगा।

राणा ने प्रेम से भीम को गले लगा लिय!

सारा झगड़ा मिट गया। राजा-रानी की चिन्ता का भार हलका हो गया। भीम यद्यपि राजा नहीं हुआ, पर उसने मेवाड़ की प्रजा के हृदय पर अधिकार जमा लिया। घर-घर भीम के इस त्याग की बड़ाई होती थी। लोग जयसिंह से भी अधिक भीमसिंह का आदर करते थे।

भीमसिंह का त्याग धन्य था! जहाँ लोग राज्य पाने के लोभ में चाहे जैसा पाप करने को तैयार रहते हैं, वहाँ भीम ने भाई के लिए सहज ही राज्य का त्याग कर दिया और खुशी से दरिद्रता को गले लगा लिया। सचमुच में भीम महात्मा थे।

---

(३३)

शेर के साथ कुश्ती

मथुरा से कोई चालीस कोस की दूरी पर, उत्तर की तरफ रेवाड़ी नाम की जगह है। दो सौ बरस से ज्यादह हुए वहाँ राव गूजरमल नाम के एक राजा राज्य करते थे। वे जाति के अहीर थे। उनके छोटे भाई का नाम राव बालकृष्ण था। बालकृष्ण दिल्ली के बादशाह मुहम्मद के दरबार में रहा करते थे।

बालकृष्ण बड़े ही बहादुर और साहसी थे। उनकी बहादुरी देख और तारीफ सुन दरबार के कितने ही कायर सरदार तथा अमीर उमरा उनसे जलने लगे। वे हमेशा इसी ताक में

रहते थे कि जैसे बने बालकृष्ण को नीचा दिखावें और मौका पड़े, तो उन्हें जान से मरवा डालें। बादशाह का ड्योढ़ी अफ़सर एक मुसलमान था। उससे बालकृष्ण का बड़ा ही प्रेम था, दोनों में सच्ची दोस्ती थी। वे घण्टों बैठ कर आपस में गपशप किया करते थे। एक दिन की बात सुनिए, बालकृष्ण राव बादशाह के महल के दरवाजे पर उस ड्योढ़ी अफ़सर से बातें कर रहे थे। कुछ दुश्मनों ने उन्हें देख लिया। बस फिर क्या था, उनकी बन आई। वे चट से बादशाह के पास पहुँचे और नमक मिर्च लगा कर बोले--"हुजूर, बालकृष्ण बहुत बदमाश आदमी जान पड़ता है, वह भरोसे का आदमी नहीं। देखिये, आज वह आपके महल के सामने खड़ा हुआ था। क्या एक अदने से आदमी को हुजूर के महल के सामने इस तरह खड़ा होना चाहिए? अगर आप उसे फ़ौरन सजा न देंगे; तो वह न जाने कब क्या उपद्रव कर बैठेगा!"

इतना सुनना था कि बादशाह आग-बबूला हो गये। उन्होंने गरज कर हुक्म दिया—'उस बदमाश को अभी मेरे सामने लाओ।'

ड्योढ़ी अफसर के साथ बालकृष्ण बादशाह के सामने पहुँचे। उन्हें देखते ही बादशाह का क्रोध और भी बढ़ गया और उन्होंने बिना कुछ सोचे समझे ही बालकृष्ण को फाँसी की सजा का हुक्म सुना दिया। ड्योढ़ी अफसर से यह अन्याय न देखा गया। उसने आगे बढ़कर बादशाह से कहा--"हुजूर, बालकृष्ण बेकुसूर हैं। ये बड़े ही ईमानदार हैं। मुझसे खड़े-खड़े सहज ही बातें कर रहे थे। न जाने, किस चुगलखोर ने आपसे झूठ चुगली कर दी है। इनको फांसी देना ठीक नहीं।"

पर नक्कारखाने में तूती की आवाज कौन सुनता। बादशाह,

ने उसे जवाब दिया—"नहीं, नहीं, मैं तुम्हारी एक न सुनूँगा। बालकृष्ण को जरूर ही फाँसी पर चढ़ाना पड़ेगा।"

तब ड्योढ़ी अफसर ने फिर बादशाह से बिनती की—"अच्छा हुजूर, ऐसा ही सही। पर रेवाड़ी से इनके भाई को बुलवा लीजिए। मरते समय दोनों आपस में मिल तो लेंगे।"

बादशाह ने यह बात मान ली। बालकृष्ण क़ैद में डाल दिये गये।

खबर पाते ही राव गूजरमल दिल्ली गये और दरबार में पहुँचकर बादशाह से बोले—"हुजूर, आपने ठीक फैसला नहीं किया। यदि आप मेरे भाई को मरवाना ही चाहते हैं, तो उसे बिना हथियार के, शेर के सामने छोड़ दीजिये। यदि वह शेर को मार लेवे, तो बेकसूर समझिए नहीं तो वह शेर के हाथों तो मारा ही जायगा।"

बादशाह ने खुशी से यह बात मान ली। और नहीं तो दो घड़ी के लिए तमाशा ही रहेगा।

बादशाह ने एक मस्त शेर बुलवाया। दुश्मन मन ही मन खुश हो रहे थे और सोचते थे—चलो, यह और भी अच्छा हुआ। बच्चू शेर के मुँह से थोड़े ही बचे जाते हैं। आह! जब शेर बालकृष्ण के चिथड़े चिथड़े कर डालेगा; तब कैसा मजा होगा! खूब फँसा है।

परन्तु जो भले आदमी थे वे उदास होकर ईश्वर से बिनती कर रहे थे कि बालकृष्ण की जान बच जाय। देखते ही देखते बालकृष्ण लँगोट खींच, ईश्वर का नाम ले शेर के पिंजड़े में घुस गये। उन्होंने जोर से शेर को ललकारा। शेर भी जोर से गरज कर बालकृष्ण पर टूट पड़ा। दोनों बहादुर जूझ पड़े। लोग जोर जोर से हल्ला मचाने और दुश्मन तालियाँ पीटने लगे। इतने में ही बालकृष्ण ने शेर के दोनों अगले पंजे पकड़

लिए और उसे घुमाकर तड़ से दे मारा। शेर जो गिरा, सो गिरा ही रहा—फिर न उठा। सब लोग 'वाह वाह' करके बालकृष्ण की तारीफ करने लगे। परन्तु दुश्मनों के मुँह काले पड़ गये। इस समय बालकृष्ण की उमर केवल अठारह बरस की थी। खूब मेहनत करके इतनी ही उमर में उन्होंने इस तरह अपना बल बढ़ा लिया था।

बालकृष्ण लाल-लाल आँखें किये पिंजड़े से बाहर निकले। दोनों भाई गले मिल गये। बादशाह ने खुद खड़े होकर बालकृष्ण की पीठ ठोंककर उन्हें शाबाशी दी। फिर उन्होंने दरबार करके बालकृष्ण को 'शेर बच्चा शमशेर बहादुर' की पदवी दी और अपनी फौज में एक बड़े अफसर का दर्जा दिया।

जब करनाल के मैदान में मुहम्मदशाह की फौज के साथ नादिरशाह की लड़ाई हुई, तब बालकृष्ण ने बड़ी बहादुरी दिखलाई थी। अन्त में मुहम्मदशाह की फौज जान लेकर भाग गई और बालकृष्ण लड़ाई के मैदान में हमेशा के लिए सोगये।

---

(३४)

मुहम्मदशाह और नादिरशाह

नादिरशाह ईरान देश के बादशाह थे, कहते हैं कि वे एक मामूली भेंड़ चराने वाले के बेटे थे। पर बड़े होने पर उन्होंने वहाँ के बादशाह की फौज में नौकरी कर ली। वे बड़े ही मेहनती और हिम्मतदार थे। कठिनाई से डरना उन्होंने सीखा ही न था। कैसा ही कठिन काम नादिर के सामने क्यों न आ जाय, वे तन मन से उसमें जुट जाते, और उसे पूरा ही करके दम लेते थे। काम में हाथ लगा करके उससे पीछे हटना या हिम्मत हार

बैठना तो नादिर ने सीखा ही न था। कहते हैं कि उस समय नादिर के समान बहादुर सिपाही ईरान में दूसरा न था। वे जिस लड़ाई पर जाते, उसे जीत कर ही आते थे। नादिर के इन कामों का नतीजा यह हुआ कि वे धीरे-धीरे ऊँचा दर्जा पाते गये और अन्त में खुद ही ईरान के बादशाह बन बैठे।

बहुत से लोग बड़ा दर्जा पा जाने से या खूब धन दौलत पा जाने से आरामतलब या आलसी बन जाते हैं। खूब खाने-पीने अच्छे-अच्छे कपड़े या गहने पहनते और पैर पसार कर सोने के सिवा उन्हें कुछ नहीं सूझता। मेहनत या कामधन्धे का नाम सुनते ही उन्हें काँटे उठ आते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि ऐसे लोग धीरे-धीरे आलसी, कमजोर या बीमार बन बैठते हैं और धन-दौलत घटने लगती है। नादिरशाह इन सब बातों को खूब जानते थे। इसलिए बादशाह हो जाने पर भी वे महल में आराम नहीं करते थे, बल्कि पहले के समान ही हिम्मतवर, मेहनती और कामकाजी बने रहे। ईरान देश का राज्य पाने के बाद उन्होंने आस पास के देश जीतने की ओर ध्यान दिया और धीरे-धीरे वे कई देशों के बादशाह बन बैठे।

अब नादिरशाह का ध्यान हिन्दुस्तान की ओर गया। उन्होंने एक बड़ी फौज लेकर हिन्दुस्तान पर चढ़ाई कर दी। उस समय यहाँ के बादशाह थे—मुहम्मदशाह, जो बड़े ही आराम तलब थे। दिन-रात महल में पड़े-पड़े मौज करने के सिवा आपको कुछ न सूझता था। हिम्मत या मेहनत से आप कोसों दूर भागते थे और लड़ाई का नाम तो सुनते ही आपको जूड़ी चढ़ आती थी। नादिरशाह की फौजें पञ्जाब में आ पहुँची, तब नौकरों ने आपसे बिनती की—हुजूर, ईरान का बादशाह आपका मुल्क जीतता हुआ दिल्ली की तरफ बढ़ रहा है, उसका कुछ इन्तजाम कीजिए।' यह सुनते ही आप बिगड़ उठे और

लापरवाही से बोले—"कहाँ ईरान और कहाँ हिन्दुस्तान! कहाँ मैं और कहाँ नादिरशाह। उस बेचारे की क्या हिम्मत जो मुझसे लड़ सके! और वह आही गये, तो देखना मैं उनकी कैसी गति बनाता हूँ। खबरदार! आज से मेरे सामने उस जङ्गली का नाम भी न लेना!" बेचारे नौकर-चाकर यह सुनते ही चुप हो रहे।

मुहम्मदशाह की लापरवाही का नतीजा यह हुआ कि नादिरशाह दिल्ली में ही आ पहुँचे और उनके सिपाही शहर में जहाँ-तहाँ लूटमार मचाने लगे। अब तो मुहम्मदशाह बहुत घबड़ाये। आपने नादिरशाह के पास खबर भेजी कि आप कुछ गड़बड़ न कीजिये; आप जो कुछ कहेंगे, मैं करने को तैयार हूँ। नादिरशाह खुद मुहम्मदशाह से मिलने आये। खबर पाकर मुहम्मदशाह भी उनसे मिलने को चले।

गरमी के दिन थे—बड़ी गरमी पड़ रही थी। मुहम्मदशाह बारीक मलमल का कुरता पहने हुए थे। दो सेवक उनके दोनों तरफ पखे हिलाते हुए और कुछ लोग आगे-आगे गुलाब जल छिड़कते हुए चलते थे। इस तरह सजधज से मुहम्मदशाह नादिरशाह को, जिसे वे हमेशा जङ्गली कहा करते थे, लेने चले। जब दोनों बादशाह मिले, तब मुहम्मदशाह ने देखा, कि ऐसी कड़ी गरमी में भी नादिरशाह ने पोस्तीन* पहन रखा है। मुहम्मदशाह को बड़ा अचरज हुआ, और उन्होंने नादिरशाह से पूछा—"जनाब इन दिनों में भी आपने पोस्तीन पहन रखा है! क्या आपको गरमी नहीं लगती?"

नादिरशाह ने मुसकुरा कर जवाब दिया—"बादशाह सला-मत, गरमी की कुछ न पूछिये। यह पोस्तीन मुझे ईरान से

---

*भेड़ के चमड़े का कोट।

दिल्ली तक ले आया है और इस बारीक मलमल के कुरते ने आपको दिल्ली से भी बाहर न निकलने दिया।"

मुहम्मदशाह ने मारे शरम के सिर नीचा कर लिया।

नादिरशाह की इस चढ़ाई से दिल्ली के हजारों आदमी मारे गये। अन्त में जब वे अपने देश को लौटने लगे, तब मुहम्मदशाह के बैठने का कीमती मयूरासन*, नामी-नामी गहने और खजाने से करोड़ों रुपये ले गये। उनके जाने के बाद, दिल्ली में जहाँ देखो, बरबादी नजर आती थी—क्या बादशाह, क्या अमीर-उमरा और क्या गरीब प्रजा; सभी से नादिरशाह ने बेहिसाब धन वसूल किया था। नादिरशाह ने चलते-चलते मुहम्मदशाह से कहा था—"बादशाह सलामत! आपने अपनी लापरवाही का नतीजा देखा? आपकी लापरवाही के कारण ही मैं ईरान से यहाँ तक आ सका और अब आप से करोड़ों रुपये का धन छीने लिये जाता हूँ। अब भी यह लापरवाही छोड़ दीजिये, हिम्मत कीजिये, मेहनती बनिये और काम-काज में मन लगाइये। नहीं तो एक दिन आपका यह सारा राज-पाट भी चला जायगा। मेहनती और काम-काजी आदमी ही दुनिया में आराम से रह सकते हैं—कुछ नाम कमा सकते हैं।"

परन्तु मुहम्मदशाह ने नादिर की बात एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल दी। उधर उन्होंने पीठ फेरी और इधर आप फिर पहले के सामन ही मजे-मौज में डूब रहे। अन्त में बाप-दादों का कमाया हुआ सारा राजपाट आपने खो दिया। मुहम्मदशाह कुछ कायर नहीं थे, बुद्धिमान भी थे, पर आरामतलबी और लापरवाही ने आपको कुछ न करने दिया, उधर

*यह सिंहासन मोर के आकार का था। इसे बादशाह शाहजहाँ ने बनवाया था। इसके बनवाने में लगभग आठ करोड़ रुपये खर्च हुए थे।

भेड़ चराने वाले का काम-काजी बेटा कई देशों का मालिक बन बैठा ।

---

(३५)

जोरावरसिंह

रावल मूलराज जयसलमेर के राजा थे । वे राज-काज की ओर अधिक ध्यान न देते थे । इसलिए उनका मन्त्री स्वरूपसिंह ही राज्य का सब काम करता था । वह जाति का जैनी और बड़ा मतलबी था । वह राजा को अपनी मुट्ठी में कर मनमाने काम करने लगा । उसके बन्दोबस्त में प्रजा बड़ी दुःखी थी । उसकी सख्ती के मारे जयसलमेर के बड़े-बड़े सरदार तक ऊब उठे । सबने सलाह की कि बिना स्वरूपसिंह का नाश किये हमारा दुःख दूर न होगा । उनकी सलाह में मूलराज का बड़ा बेटा राजकुमार रायसिंह भी शामिल हो गया । उसने स्वरूपसिंह का नाश करने की प्रतिज्ञा की ।

एक दिन दरबार लगा हुआ था । स्वरूपसिंह मूलराज के सामने बैठा हुआ राज-काज की बातें कर रहा था, इसी समय राजकुमार रायसिंह नङ्गी तलवार लिये हुए वहाँ आ पहुँचा । उसने स्वरूपसिंह को मारने के लिए तलवार खींची । स्वरूपसिंह मूलराज से गिड़गिड़ा कर अपने बचाने के लिए प्रार्थना करने लगा । इतने में रायसिंह ने तलवार चला दी । स्वरूपसिंह दो एक बार तड़प कर ठंढा हो गया । तब सरदारों ने रायसिंह से कहा—"मूलराज की बदौलत ही स्वरूपसिंह ने इतना ऊधम मचाया था, इसलिए इन्हें भी न छोड़िये ।" परन्तु रायसिंह ने जवाब दिया—"जो कुछ भी हो, वे मेरे पिता हैं, मैं उन पर हाथ न उठाऊँगा ।"

पुत्र का वह भयङ्कर रूप देखते ही मूलराज वहाँ से खिसक गये थे। अब तो सरदार बहुत घबड़ाये! उन्होंने सोचा—"जब तक मूलराज रहेंगे, तब तक हमारे सिर राज-आफत चक्कर काटती रहेगी। जब हमने उनके मारने की बात कही है, तब वे कभी जीता न छोड़ेंगे।" यह सोचकर उन्होंने रायसिंह से कहा—"अच्छा, आप पिता पर हाथ न चलाइये, पर आज ही आप राजा बनिये। हम अभी आपको राजतिलक देते हैं। यदि आप हमारी बात न मानेंगे तो हम आपके छोटे भाई को राजा बना देंगे।"

अब रायसिंह क्या करता, लाचार होकर उसने पिता को क़ैद कर लिया। राज्य के सभी काम रायसिंह के नाम से होने लगे। परन्तु सरदारों के बहुत कहने सुनने पर भी रायसिंह राजसिंहासन पर नहीं बैठा।

ये सब काम जिंगियाली के राठौर सरदार अनूपसिंह की सलाह से हुए थे। जब रायसिंह राजा हुआ, तब अनूपसिंह प्रधान मन्त्री बनाये गये। अनूपसिंह भी प्रधान मन्त्री का पद पाकर मनमाने काम करने लगे। राज्य भर में अशान्ति मच गयी। परन्तु अनूपसिंह की पत्नी बड़ी धर्मात्मा और राज-भक्त थी। उसने सोचा, सरदारों ने मूलराज को गद्दी से उतार कर बड़ा पाप किया है और पतिदेवता प्रधान मन्त्री होकर उस पाप भार को और भी बढ़ा रहे हैं। इसलिए जैसे बने वैसे मूलराज को क़ैद से छुड़ाना चाहिए। यदि प्रजा का दुःख दूर करने के लिए पति देवता भी मारे जायँ; तो कुछ चिन्ता नहीं। बस; उसने अपने पुत्र जोरावरसिंह को बुला भेजा। जोरावरसिंह बड़ा ही चतुर और माता की आज्ञा को कभी टालने वाला न था। माता ने उससे कहा "बेटा, जैसे बने, अपने राजा को क़ैद से छुड़ाओ। इस काम में

यदि तुम्हारे पिता भी मारे जायँ, तो चिन्ता न करना। मैं सती होकर उनका साथ दूँगी।" जोरावर सिंह ने माता की आज्ञा मान ली। इसके बाद उस धर्मात्मा ठकुरानी ने अपने देवर अर्जुनसिंह और बारू के सरदार मेघासिंह को भी इस काम के लिए राजी कर लिया।

अब ये तीनों आदमी मिल कर मूलराज को छुड़ाने की तैयारी करने लगे! पाँचवें दिन वे बहुत-सी सेना लेकर कैदखाने में घुस गये! उन्होंने मूलराज को छोड़ दिया। मूलराज ने समझा कि ये लोग रायसिंह के आदमी हैं और मुझे धोखा देने के लिए यहाँ आये हैं, इसलिए उन्होंने कैदखाने से निकलने के लिए नाहीं कर दी। पर, जब जोरावरसिंह ने उन्हें बहुत समझाया तब कहीं उन्हें भरोसा हुआ। वे कैदखाने से निकले और राजसिंहासन पर जा बैठे।

इस समय रायसिंह अपने महल में पड़ा सुख की नींद ले रहा था। मूलराज ने सिंहासन पर बैठते ही उसे देश निकाले की आज्ञा दी। बात की बात में यह खबर नगर भर में फैल गयी। जो सरदार अब तक रायसिंह का साथ दे रहे थे, इस खबर ने तो मानों उन पर बिजली ही गिरा दी। रायसिंह के साथ ही उन्हें भी देश छोड़ना पड़ा। केवल मूलराज को कैद से छुड़ाने वाले ये तीन सरदार ही राज्य में रहने पाये मूलराज उनका बहुत आदर करते थे, उस समय मे राज्य में जोरावर की बात बहुत चलने लगी।

जिस समय रूपसिंह मारा गया, उसके पुत्र सालिमसिंह की उमर केवल ग्यारह बरस की थी। जब वह कुछ बड़ा हुआ,तब मूलराज ने उसे ही अपना प्रधान मंत्री बनाया। सालिमसिंह देखने में तो बड़ा सीधा सादा था, पर उसके पेट में दाँत थे उसने मन ही मन इरादा कर लिया था कि जिन लोगों के

बदौलत मेरे पिता मारे गये हैं, उनसे गिन-गिन कर बदला लूंगा। परन्तु जोरावरसिंह से हमेशा दबना पड़ता था। तब उसने मूलराज के कान भरने शुरू किये। धीरे-धीरे मूलराज अपने उपकारी के उपकार भूल गये। सालिमसिंह के कहने में आकर उन्होंने एक दिन जोरावरसिंह को देश से निकाल दिया।

इसके कुछ दिन बाद ही महाराज भीमसिंह मारवाड़ के राजा हुए। रावल मूलराज ने उनके पास भेंट में बहुत सी वस्तुएँ भेजीं। वह सब सामान लेकर सालिमसिंह ही मारवाड़ में आया था। भीमसिंह को भेंट देकर सालिमसिंह जयसलमेर लौटा। जयसलमेर से निकले हुए सब सरदार सालिमसिंह से से खार खा रहे थे। उसके मारवाड़ जाने की खबर सुनते ही सब लोग इकट्ठे हो गये। उन्होंने सलाह कर ली कि ज्योंही सालिमसिंह जयसलमेर को लौटे, त्योंही उससे बदला लेना चाहिये। जबसालिमसिंह वहाँ से लौटा,तबसबसरादरों ने उस पर हमला किया उसके साथ जो थोड़े से आदमी थे वे सब यह आफत देखते ही नौ दो ग्यारह हो गये। अब रह गया अकेला सालिमसिंह, सो सरदारों ने उसे फौरन पकड़ लिया।

एक ने कहा—यही वह बेईमान चण्डाल बनिया है,जिसकी बदौलत आज हम गली-गली मारे फिरते हैं। दूसरे ने कहा—"मार पापी को, जाने न पाये!" तब तक तीसरे ने तलवार खींच ली। तब तो सालिमसिंह बहुत घबड़ाया। उसकी आँखों में आँसू भर आये। उसने जोरावरसिंह के पैरों पर पगड़ी रख द और गिड़गिड़ा कर कहा—'ठाकुर साहब! मेरे प्राण बचाइये। मैं आपकी शरण में हूँ, मेरे अपराध क्षमा कीजिये। आप लोगों को सताकर मैंने सचमुच पाप किया है। भगवान गवाह हैं अब कभी ऐसा न करूँगा और महाराज से कहकर आप लोगों की जागीरें दिलवा दूँगा।"

राजपूत शरण में आये हुए आदमी पर हाथ नहीं उठाते; चाहे वह फिर कैसा ही पापी क्यों न हो। जिस पापी के बदौलत आज वे लोग मारे-मारे फिर रहे थे, जिनकी दुर्गति का कुछ ठिकाना न था, उसे ही प्राणों की भीख माँगते देख जोरावरसिंह का हृदय पिघल उठा। उन्होंने सब सरदारों से कहा—"भाइयो, आज राजपूत के धर्म की लाज रखो! जब यह पापी प्राणों की भीख माँग रहा है, तब क्या आप इस पर तलवार चलाकर राजपूत धर्म में कलंक लगाओगे?" यह सुनते ही सब राजपूतों ने अपनी-अपनी तलवारें म्यान के अन्दर कर लीं। उन्होंने छाती पर पत्थर रख उस पापी को प्राण-दान की भीख दे दी।

सालिमसिंह को क्षमा कर देने से मूलराज ने भी सब सामन्तों का अपराध क्षमा कर दिया। सालिमसिंह ने मूलराज से कह कर फिर से उनकी जागीरें उन्हें दिलवा दीं। सरदारों को जागीरें तो मिल गईं; पर उन्हें दरबार में पहले जैसे अधिकार न मिला। केवल जोरावरसिंह को ही दरबार में पहले जैसे अधिकार मिले।

❀ समाप्त ❀